UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186464

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891/B13 Bh Accession No. H 2884

Author ભટ્ટાચાર્ય, રામજી લાલ

Title ગાંધીજી દર્શન

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

लेखक—
श्री रामजीलाल बधौतिया
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), साहित्यरत्न ।

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा ।

प्रकाशक—
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

द्वितीय संस्करण
जनवरी—१९५८
मूल्य २॥)

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फर खाँ, आगरा।

विषय-सूची

जीवनी १

रचनाएँ २५

प्रश्न :—

१—'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य में प्रकृति-प्रयोग' शीर्षक पर एक सुगठित निबन्ध लिखिए। ४७

२—'भारतेन्दु जी का विरह चित्रण' इस विषय पर एक लेख लिखिए। ५१

३—'भारतेन्दु की विचारधारा' पर अपने विचार भारतेन्दु की रचनाओं के आधार पर प्रकट कीजिए। ५७

४—'भारतेन्दु जी का ईश्वरोन्मुख प्रेम' शीर्षक पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। ७१

५—'भारतेन्दु जी की रचनाओं में अनुवाद की मौलिकता' पर एक निबन्ध लिखिए। ७६

६—'भारतेन्दु काव्य में हास्य और व्यंग्य' विषय पर अपने विचार प्रकट कीजिए। ८०

७—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के निबन्ध साहित्य का विश्लेषण करते हुए, उनकी निबन्ध लेखन सफलता पर अपने विचार प्रकट कीजिए। ८८

८—'भारतेन्दु जी का समाचार-पत्र साहित्य' का, इतिहास संक्षिप्त रूप में लिखिए। ९४

९—भारतेन्दु जी की काव्य कला पर एक सुन्दर आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए। ९९

१०—भारतेन्दु जी की नाट्य कला' पर एक सुन्दर आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए। ११८
११—'भारतेन्दुजी ने गद्य-भाषा को एक निश्चित रूप देकर गद्य परम्परा चलाई थी। इस कथन पर विचार करते हुए भारतेन्दु जी की गद्य शैली पर अपने विचार प्रकट कीजिए। १२८
१२—'भारतेन्दु जी की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देश-भक्ति था। इस कथन की पुष्टि कीजिए। १३४
१३—'भारतेन्दु जी के नाटक भारतीय समाज और तत्कालीन शासन के लिए चेतावनी स्वरूप है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए। १४०
१४—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के गीतिकाव्य की समालोचना कीजिए। १४८
१५—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी का हिन्दी साहित्य मे स्थान निर्धारित कीजिए। १५६
परिशिष्ट १७५

आत्म-निवेदन

विश्व-विद्यालय की उच्च उपाधि लेने के पश्चात् विश्व-गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन के आदर्श पर एक विद्यापीठ के स्थापन की कल्पना की थी। उसी कल्पना-मन्दिर में हिन्दी की उच्चतम परीक्षा में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों को विशेष कवि के रूप में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' पढ़ाना पड़ा। यह पुस्तक उसी साधना का एक पुष्प है।

\+ × +

युग-नेता महाकवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में इस पुस्तक को लिखते समय महान् विद्वानों की रचनाओं से पूर्ण सहायता ली गई है। पत्र-पत्रिकाओं के लेखों से पर्याप्त सहायता मिली है। लेखक उन सभी विद्वानों का हृदय से आभारी है।

यदि मेरे इस प्रयास से भारतेन्दु के उपासकों को कुछ लाभ हुआ, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

रामजीलाल बधौतिया

'जबलौं भारत भूमि मध्य आरज कुल बासा ।
जबलौं आरज धर्म माँहि आरज विश्वासा ॥
जबलौ गुन आगरी नागरी आरज बानी ।
जबलौं आरज बानी के आरज अभिमानी ॥
तबलौं यह तुम्हरो नाम थिर विरजीवी रहि है अटल ।
नित चन्द सूर सुमरिहै हरिचन्दहु सज्जन सकल ॥"

—पाठक

प्रश्न

प्रश्न १—'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य में प्रकृति-प्रयोग' शीर्षक पर एक सुगठित निबन्ध लिखिए।

उत्तर—कवि को प्रकृति के पुरोहित की संज्ञा दी गई है। जिस प्रकार एक पुरोहित के लिए यजमान के समस्त कुलाचारों से भिज्ञ होना अति-आवश्यक है, उसी प्रकार कवि को भी प्रकृति निरीक्षण की असाधारण एवं अलौकिक शक्ति रखना अनिवार्य है। भारतीय साहित्य में आलोचना के दृष्टिकोण से वही कवि सफल कवि अथवा सफल साहित्यिक समझा जाता है जिसकी रुचि नर प्रकृति तक ही आबद्ध न होकर बाह्य प्रकृति की ओर भी समान रूप से रही हो। दूसरे शब्दों में सफल कवि वही है जिसने मानवी वृत्तियो और प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन समान रूप से किया हो।

सस्कृत साहित्य मे आदि कवि बाल्मीकि, कालीदास तथा भवभूति आदि की रुचि नर-प्रकृति और बाह्य-प्रकृति मे समान रूप से ही रही है। इन कवियों ने जिस भावुकता अथवा तन्मयता के साथ मानवी प्रकृति का चित्रण किया है, उससे कहीं अधिक भावुकता के साथ बाह्य प्रकृति का। यही कारण कि विश्व-साहित्य में वे अमर हैं। किन्तु सभ्यता के विकास के साथ प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन गौण होता गया, नर प्रकृति की प्रधानता बढ़ती गयी। कविगण प्रकृति की रमणीय गोद को छोड़कर विशाल एवं समृद्धिशाली नगरों में निवास करने लगे। फलतः मानवी प्रकृति का क्षेत्र विस्तृत होता गया। हिन्दी काव्य का जन्म ठीक ऐसी ही परिस्थिति में हुआ था। इसलिए हिन्दी में प्रकृति-प्रेमी कवियों का अभाव रहा। इसके अतिरिक्त भारत में विदेशी शासन का श्रीगणेश हुआ। सर्वप्रथम कवियों ने ओजस्विनी वाणी द्वारा मृतक हृदयों में साहस उत्पन्न करने का सकल्प किया। किन्तु सभी प्रयत्न असफल रहे। अन्त में बार-बार असफलता का आलिंगन करके भारतीय हृदय

में वैराग्य के भाव जाग्रत हुए। कविगण राम-कृष्ण की भक्ति से अपनी वाणी पवित्र करने लगे। इन कवियों ने अपने काव्य में नर-प्रकृति तथा बाह्य-प्रकृति दोनों को ही समुचित स्थान दिया। तदनन्तर रीति काल का आरम्भ हुआ। इस काल में प्रकृति वर्णन को स्थान मिला किन्तु केवल उद्दीपन विभाव के लिये। सारांश यह है कि रीतिकाल में प्रकृति वर्णन केवल वियोग-सयोग शृङ्गार वर्णन की सहायता के लिए, गौण रूप में रहा। इसी रीतिकाल के अन्तिम चरण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने हिन्दी जगत में पदार्पण किया। यद्यपि इस युग में हिन्दी कविता राजाश्रयों से छुटकारा पा जनमार्ग पर आ खड़ी हुई थी किन्तु फिर भी उसमें काव्य की पूर्व परम्पराओ का गहरा अनुरोध था। इसके अतिरिक्त नवीनता का भी अभाव नहीं था। इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी प्राचीनता और नवीनता की संधि पर खड़े प्रतीत होते हैं। उनके काव्य में यदि एक ओर प्राचीन परिपाटी के अनुसार भक्तिकाव्य तथा शृङ्गार काव्य के दर्शन होते हैं, तो दूसरी ओर नवीन भावनाओं की सुन्दर झाँकी देखने को मिलती है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने रीतिकालीन काव्य की स्थापित रूढ़ि के अनुसार प्रकृति वर्णन उद्दीपन भाव की पुष्टि के लिए किया है। उसमें किसी प्रकार की नवीनता देखने को नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त उनका जन्म विशाल काशी नगरी के एक भव्य भवन में हुआ था। वे जीवन-पर्यन्त काशी में ही रहे। प्रकृति की ओर वे आकर्षित न हो सके। उनकी रुचि मानव-प्रकृति में ही रमी रही। सारांश यह है कि उनकी रचनाओं में प्रकृति चित्रण का अभाव है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में भारतेन्दु जी ने गंगा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है किन्तु वह भी काशी के सुन्दर घाटों को स्पर्श करती हुई गंगा का वर्णन है। उसमें मानव-कृति का उल्लेख ही अधिक मात्रा में दिखाई देता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी स्वच्छन्द रूप से वन में प्रवाहित होती हुई भागीरथी का चित्रण करने में असमर्थ रहे हैं। केशवदास जी की भाँति नर-प्रकृति में ही उनका मन अधिक रमा है। देखिए—

'नव उज्ज्वल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहराति बूँद, मध्य मुक्ता मनि पोहति॥

लोल लहरि लहि पवन, एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध, मनोरथ करत मिटावत॥
कासी कहँ प्रिय जानि, ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपनेहू नाहिं तजी, रही अंकम लपटाई॥
कहूँ बने नव घाट उच्च, गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत॥
मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज, कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहूँ सुन्दरी नहात, वारिकर जुगल उछारत।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
दीठि जहाँ जहँ जात रहत तितही ठहराई।
गंगा छवि 'हरिचन्द' कछू बरनी नहिं जाई॥'

स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दु जी की दृष्टि बार-बार नर-प्रकृति की ओर ही जाती है। उनकी दृष्टि में उस अलौकिक शक्ति का अभाव है जो प्राकृतिक व्यापारों में प्रवेश कर मानव हृदय को मन्त्र-मुग्ध करदे।

इसी प्रकार भारतेन्दु जी ने 'चन्द्रावली' नाटिका में यमुना छवि का वर्णन ललिता सखी द्वारा अत्यन्त ही सुन्दर ढंग से कराया है किन्तु वह भी उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारों की अधिकता से अस्वाभाविक सा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि प्रस्तुत वस्तुओं की ओर किंचितमात्र भी आकर्षित नहीं होता है। उसमें कला का सुन्दर प्रदर्शन है किन्तु भावुकता नहीं। देखिए—

तरनि तनूजा - तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निजनिज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप बारन तीर को सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत॥ १॥
कहूँ तीर पर अमल कमल सोभित बहु भाँतिन।
कहूँ सैवालिन मध्य कुमुदनी लगि रही पाँतिन॥

मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखति ब्रज सोभा।
कै उमगे प्रिय - प्रिया प्रेम के अगनित गोभा॥
कै करिकै कर बहु पीय को टेरत निज ढिंग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥२॥
परत चन्द प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द्र जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छवि छायो॥
कै रास रमन में हरि मुकुट आभा जल दिखरात है।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है॥३॥

उपर्युक्त वर्णन में यमुना का वर्णन चन्द्रावली की सखी ललिता के हृदय पर पड़े प्रभाव का वर्णन है।

प्रातःकालीन मन्द-मन्द प्रवाहित होती हुई वायु के वर्णन में भी नगर की दूषित वायु की गन्ध आती है। देखिए—

गावें भौंरे गूजि पात खरक मृदंग,
गुनी को अखारो लिए प्रात पौन संग।
काम में चेतन्य कर देत है जगाय,
मित्र उपदेस वन्यौ भोर पौन आय॥
पराग को मौर दिए पच्छी बोल बाज,
ब्याहन आवत प्रात पौन, चल्यौ आज।
आप देत थपकी गुलाब चुटकार,
बालक खिलावै देखो प्रात की बयार॥

सारांश यह है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के काव्य में प्रकृति के सुन्दर एवं मर्म-स्पर्शी चित्रों का अभाव है। उन्होंने राधाकृष्णदास जी को स्वलिखित पत्रों में काश्मीर यात्रा के प्रकृति के सुन्दर चित्र अङ्कित किए हैं। काव्य अथवा नाटकों में जहाँ कहीं उन्होंने प्रकृति को स्पर्श किया है, वहाँ ब्रजभाषा काव्य की परिपाटी के अनुसार वस्तुओं की गणना की है या उद्दीपन के रूप में प्रकृति-वर्णन को गौण स्थान ही दिया है।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लजी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रकृति-चित्रण पर अपने विचार निम्नलिखित् रूप से प्रकट किए हैं।

'बाबू हरिश्चन्द्र ने यद्यपि समयानुकूल प्रसंग छेड़ नये-नये संस्कार उत्पन्न किए, पर उन्होंने प्रकृति पर प्रेम नहीं दिखाया। उनका जीवन-वृत्तान्त पढ़ने से भी पता चलता है कि वे प्रकृति के उपासक न थे। उन्हें जंगल, पहाड़, नदी आदि देखने का उतना शौक न था।'

प्रश्न २—'भारतेन्दु जी का विरह-चित्रण' इस विषय पर एक लेख लिखिए।

उत्तर—काव्याचारों के मतानुसार, शृंगार रस को रसों का सम्राट् कहा है। शृंगार रस के संयोग और विप्रलम्भ दो भेद होते हैं। दूसरे शब्दों में संयोग मिलन और विप्रलम्भ विरह कहे जा सकते हैं। 'विरह प्रेम की जाग्रत गति है और सुषुप्ति मिलन है' के कथनानुसार कवि की दृष्टि में विरह-वर्णन अधिक विशेषता रखता है। यही कारण है कि प्रत्येक साहित्य में कवियों ने विरह के अधिक मनोरम और आकर्षक चित्र उपस्थित किये हैं। हिन्दी काव्य के रीतिकाल में तो 'विरह चित्रण' कवियों के लिए एक अनिवार्य विषय सा बन गया था। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र रीतिकाल और आधुनिक काल की मिलन रेखा पर अवतरित हुए थे। इसीलिए उनके काल में यदि एक नवीनता की पावन झाँकी होती है, तो दूसरी ओर प्राचीनता का भव्य रूप आकृष्ट किए बिना नहीं रहता है। यही कारण है कि भारतेन्दु जी ने अपने काव्य में रीतिकालीन परम्परा के अनुसार विरह-चित्रण को भी स्थान दिया है। किन्तु उनका विरह-वर्णन रीतिकालीन रूढ़िवादी कवियों के विरह-वर्णन से भिन्न है।

रीतिकालीन कवियों के विरह-वर्णन में स्वाभाविकता के स्थान पर अतिशयोक्ति और अस्वाभाविकता की पूर्णता है। उन्होंने नायिका को खिलवाड़ समझकर कल्पनाओं की ऊंची उड़ान भरी है। फलतः अस्वाभाविकता पग-पग पर दिखाई देती है। कहीं-कहीं उनकी वस्तु-व्यंजना औचित्य की सीमा को पार करके खिलवाड़ के रूप में प्रतीत होती है। यही नहीं कहीं-कहीं तो कवि ऊंची और विचित्र कल्पना की उड़ान को कवित्व समझने लगते हैं।

विरहजन्य ऐसे व्यापारों को देखकर नायिका के प्रति समवेदना तो दूर रही, हंसी आती है। रीतिकाल के सभी कवियों में ऐसे दोष मिलते हैं। देखिए बिहारी जी की विरहिणी कैसी वियोगाग्नि में जल रही है। उसकी विरहाग्नि उसी तक सीमित नहीं रहती, उसके समीप आने वाली सखियाँ झुलसने लगती हैं। पड़ौसियों को जाड़े के दिनों में भी ग्रीष्म का ताप दिखाई देता है। सखियाँ झुलसने के डर से जाड़े की रातों में गीले वस्त्र लेकर विरहिणी के समीप जाने का साहस करती हैं—

'सीरे जतननि सिसिर ऋतु सहि विरहिनि तन ताप।
बसिबे कौं ग्रीषम दिनन परयो परोसिन पाप॥
आड़े दै आले बसन जाड़े हू की राति।
साहस कै कै नेहबस सखी सबै ढिग जाति॥'

आचार्य देव भी ऐसे दोष से मुक्त नहीं रहे हैं। उनकी विरहिणी भी जाड़े की रातों में वियोगाग्नि से सखियों द्वारा विजना डुलाने पर भी शान्ति का अनुभव नहीं करती है। सभी शीतल उपचार प्रभावहीन सिद्ध होते हैं। देखिए—

'बालम-विरह जिन जान्यो न जनमभरि,
बरि बरि उठै ज्यों ज्यों बरसै बरफ राति।
बीजन डुलावत सखी जन त्यों सीतहू मैं,
सौति के सराप तन तापन तरफराति॥
देव कहै साँसन ही अँसुआ सुखात, मुख,
निकसै न बात, ऐसी सिसकी सरफराति।
लौटि-लौटि परति करौंट खाट पाटी लै लै,
सूखे जल, सफरी ज्यों सेज पै फरफराति॥'

कहने का तात्पर्य यह है कि रीतिकालीन कवियों के विरह वर्णन में स्वाभाविकता का अभाव है। अनेक स्थानों पर क्लिष्ट कल्पनाएँ साधारण अर्थ-ग्रहण में बाधक सिद्ध होती हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उपर्युक्त सभी दोषों से मुक्त हैं। उन्होंने विरह का हृदय-स्पर्शी, मार्मिक और स्वाभाविक चित्रण किया है। साहित्याचार्यों के

अनुसार विरह के चार अङ्ग बताये गये हैं–पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। आधुनिक युग के कुछ विद्वान पूर्वराग और मान को विरह के अन्तर्गत नहीं मानते हैं। साहित्यशास्त्र के अनुसार उपर्युक्त चारो अङ्ग ही विरह के वर्गीकरण में आते हैं; क्योंकि संस्कृत साहित्य के अनुसार मिलन और विरह का आधार सामीप्य अथवा पार्थक्य या उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति नहीं हैं वरन् सुख दुख हैं। दो प्रेमी हृदयों में किसी प्रकार का व्यवधान भी संयोग को वियोग में परिवर्तित कर सकता है। अतः विरह का उपर्युक्त वर्गीकरण स्वाभाविक एवं शास्त्रानुकूल है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने विरह के चारों अंगों का चित्रण अत्यन्त सुन्दरतम रूप में किया है। यही नहीं उनके काव्य में श्रवण, दर्शन, स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन आदि के वर्णन भी अत्यन्त ही मनोरम रूप में किये गये हैं। उनकी चन्द्रावली नाटिका हिन्दी साहित्य की अमर निधि है। चन्द्रावली के प्रेम में जो कसक, तड़पन एवं व्याकुलता है, वह सूर और मीरा की सरस रचनाओं से कम आनन्द नहीं देती है। चन्द्रावली प्रेम की प्रतिमा है। उसके प्रेमपूर्ण हृदय में श्रीकृष्णजी के सौन्दर्य तथा गुण सुनने से पूर्वानुराग उत्पन्न होता है। देखिए—

'सखी ये नयना बहुत बुरे।
तब सों भये पराए जब से हरि सों जाय जुरे॥
मोहन के रस बस ह्वै डोलत, तलफत तनकि दुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छोड़ी ऐसे ये निगुरे॥
जग खीझयौ बरज्यौ पै ये नहि हठ सों तनिक मुरे।
अमृत-भरे देखत कमलन से विष के बुते छुरे।'

यद्यपि कतिपय साहित्य-मर्मज्ञों ने चन्द्रावली के विरह को पूर्वराग ही माना है; किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्थान-सामीप्य के कारण चन्द्रावली और श्रीकृष्ण जी का मिलन पहले कभी हो चुका है। इसीलिये निम्नलिखित सवैया में मिलनोपरान्त भावों की व्यंजना प्रस्फुटित होती है। देखिए—

'मन मोहन ते बिछुरी जब सों, तन आँसुन सों सदा धोवती है।
हरिचन्द जू प्रेम के फन्द परी, कुल की कुल लाजहिं खोवती है।

दुख के दिन को कोऊ भाँति बितै, बिरहागम रैन संजोवती है।
हमहीं अपुनी दशा जानें सखी, निसि सोवती हैं किधौं रोवती है ॥'

सम्भव हो सकता है, दर्शन-मात्र से प्रेम उत्पन्न हो गया हो। देखिए—

'वह सुन्दर रूप विलोकि सखी,
मन हाथ ते मेरे भग्यो सो भग्यो।'

किन्तु आगे चलकर मुग्धा नायिका की भाँति चन्द्रावली अपने पूर्व प्रेम को स्वयं प्रकट करती है। इस प्रकार उसका वियोग मान की श्रेणी में भी रक्खा जा सकता है। चन्द्रावली का उपालम्भ कितना स्वाभाविक एवं संवेदनापूर्ण है देखिए—

'कितकौं ढरिगौ, वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।
हरिचन्द भए हौ कहा के कहा,
अन बोलिबे में नहि छाजत हौ ॥
नित को मिलनो तो किनारे रह्यौ,
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइ कै नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ।'

चन्द्रावली का प्रेम अत्यन्त ही विशुद्ध प्रेम है। उसके प्रेम में चातक की सी अनन्यता है। उसके प्रेम की विह्वलता देखिए—

'बलि साँवरी सूरत मोहिनी मूरत आँखिन को कबौं आप दिखाइए।
चातक सी मरै प्यासी परी इन्हें पानिप रूप सुधा कबौं प्याइए ॥
पीत पटै बिजुरी से कबौं हरिचन्द जू धाइ इतै चमकाइए।
इतहूँ कबौ आइके आनन्द के घन-नेह को मेह पिया बरसाइए ॥

विरह की प्रारम्भ में तीन दशाएं होती हैं—अभिलाषा, चिन्ता और स्मृति। इन तीनों दशाओं का चित्रण भारतेन्दु बाबू ने कितने ही सुन्दर ढंग से किया है। देखिए—

'पहिले मुसुकाइ लजाइ कछू क्यों चित मुरि मो तन छाम कियौ।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ कै प्रीति निवाहन को क्यों कलाम कियौ ॥

'हरिचंद्र' भये निरमोही इते निज नेह को यों परनाम कियौ ।
मन माँहि जो तोरन ही की हुती अपनाइ के क्यों बदनाम कियौ ॥'

प्रतीत होता है चन्द्रावली और श्रीकृष्ण जी में प्रेम-निर्वाह की पूर्व-प्रतिज्ञा हो चुकी थी।

आगे चलकर विरही की वह अवस्था होती है जब वह वियोगाग्नि के कारण अपनी साधारण चेतना को छोड़ देता है। उस समय उसे सारा संसार शून्य दिखाई देता है। उसे ऐसी अवस्था में जड़-चेतन में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता है। ऐसी दशा को विरह की चरम-स्थिति कहा जा सकता है। ऐसी दशा का चित्रण प्रायः सभी महारथी कवियों ने किया है। भगवान राम सीता जी के वियोग में विलाप करते हैं। देखिए—

'हे खग-मृग ! हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृग-नयनी।'

सूरदास जी ने गोपियों की वियोगावस्था का भी ऐसा ही मार्मिक-चित्रण किया है। विरह में गोपियाँ मधुवन को कोसने लगती हैं—

'मधुवन तुम कत रहत हरे।
विरह-वियोग श्यामसुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे।'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की चन्द्रावली भी विरह की इस चरम-स्थिति पर पहुँच जाती है। वह भी विरह की अधिकता से जड़-चेतन में कोई भेद नहीं समझती है। देखिए –

'अहो अहो वन के रूख कहूँ देखो पिउ प्यारो।
मेरे हाथ छुड़ाय कहौ वह कितै पधारो॥
अहो कुंज वन लता विरछ तृन पूछत तोसों।
तुम देख कहुँ स्याम मनोहर कहहु न मोसो॥'

आगे चलकर चन्द्रावली की वियोगाग्नि अधिकाधिक तीव्र होती जाती है। ऐसी दशा में उसे महत्व पदार्थ भी सहायक प्रतीत होने लगते हैं, प्रकृति में एक प्रकार की आत्मीयता का अनुभव करती हुई चन्द्रावली प्रश्न करती है—

'अरे ! पौन मुख मौन, सबै थल गौन तुम्हारो।
क्यौं न कहौ राधिका गैन सो मौन निवारो॥

अहो ! भंवर, तुम श्याम रंग मोहन व्रतधारी।
क्यौं न कहौ वा निठुर स्याम सों दसा हमारी ॥
अहो ! हंस तुम राजवंस सरवर की सोभा।
क्यौं न कहौ मेरे मानस सों दुख के गोभा ॥'

स्वीकार करना पड़ेगा कि चन्द्रावली का विरह-वर्णन अत्यन्त हृदय-स्पर्शी है। यह किसी भी अवस्था मे सूर, तुलसी अथवा जायसी आदि के विरह-वर्णन से कम नहीं हैं। देखिए जायसी जी की नागमती भी वियोगावस्था में इसी प्रकार आत्म-विस्मृत हो भौंरे आदि से पति के पास संदेश भेजना चाहती है—

'पिय सों कहेउ सदेसड़ा, हे ! भौंरा, हे ! काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, तेहिक धुआँ हम लाग॥'

आगे चलकर तो चन्द्रावली की दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। ऐसा कौन-सा हृदय होगा जो चन्द्रावली की इस अवस्था को देखकर सहानुभूतिपूर्ण होकर न उमड़े।

'छरी सी छकी सी जड़ भई सी जकी सी धर ;
हरी सी बिकी सी सो तो सबही धरी रहै।
बोलें तें न बोले टग खोलै ना हिंडोलै बैठि,
एकटक देखे सो खिलौना सी धरी रहै ॥
'हरीचन्द' औरौ घबरात समुझाएं हाय,
हिचकि - हिचकि रोबै जीवति मरी रहै।
याद आएं सखिन रोवावै दुख कहि - कहि,
तौ लौं सुख पावें जो लौं, मूरछि परी रहै ॥

उपर्युक्त कवित्त में मरण को छोड़कर वियोग की सभी अवस्थाओं का चित्रण है। इस प्रकार 'चन्द्रावली नाटिका' में विरह-चित्रण अत्यन्त ही अनुपम रूप में हुआ है। ऐसा स्वाभाविक तथा मार्मिक वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। भाव और अनुभूति की दृष्टि से चन्द्रावली नाटिका की कविताओं की गणना भक्ति-परक रचनाओं में भी हो सकती है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने चन्द्रावली के अतिरिक्त अन्य रचनाओं

में भी विरह-चित्रण अत्यन्त विषद् रूप में किया है। विरह वर्णन का सांगोपांग चित्रण उनके काव्य की विशेषता है। प्रेममाधुरी, रागसंग्रह, वर्षाविनोद आदि ग्रंथो में विरह की सभी दशाओं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, उन्माद, प्रलाप, व्याधि, जड़ता और मरण आदि के चित्र अत्यन्त कौशल के साथ चित्रित किये गये हैं। विरह की मरणावस्था का मनोरम चित्र देखिए—

'हे हरि जू बिछुरे तुम्हरे नहिं धारि सकी सो कोउ विधि धीरहिं।
आखिर प्रान तजे दुख सों न सम्हारि सकी वा वियोग को पीरहिं॥
पै 'हरिचन्द' महा कलिकान कहानी सुनाऊं कहा बलवीरहिं।
जानि महा गुन रूप की रासि न प्रान तज्यौ चहे वाके सरीरहिं॥'

सन्देश-प्रेषक के शब्दों में कैसी मार्मिकता है। विरहिणी पिय-वियोग में प्राणों को धारण न कर सकी। किन्तु प्राण उस विरहिणी के महागुण रूप राशि के शरीर को छोड़ न सके। अतः वियोगिन जीवित है। करुणारस का कैसा हृदयस्पर्शी चित्र है।

अतः हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का विरह-वर्णन अत्यन्त उच्चकोटि का है। उनकी रचनाओं में सूर, तुलसी और जायसी की रचनाओं का सा आनंद आता है। ब्रजभाषा काव्य परम्परा में तो भारतेन्दु जी का विशेष स्थान है। विरह की ऐसी मार्मिक, हृदय-स्पर्शी व्यंजना उच्चकोटि के कवियों में ही मिल सकती है। यदि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' अर्थात् रस से भरा हुआ वाक्य ही कविता है तो भारतेन्दु जी वियोग-वर्णन के एक सफल कवि हैं।

प्रश्न ३—"भारतेन्दु जी की विचारधारा" पर अपने विचार भारतेन्दु जी की रचनाओं के आधार पर प्रकट कीजिए।

उत्तर—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता के संघात-काल के आरम्भ में हुआ था। इसलिए उनके काव्य में यदि एक ओर नवीनता की झाँकी होती है तो दूसरी ओर प्राचीनता का भव्य रूप आकृष्ट किये बिना नहीं रहता है। उन्होंने प्राचीनता और नवीनता का अनुपम समन्वय करके हिन्दी साहित्य को प्रगतिशील पथ पर अग्रसर किया।

उनकी इस साधना से नवीन विचारधारा विकसित हुई। परवर्ती कवियों और लेखकों ने इस विचारधारा को पूर्णरूप से परिपक्व किया। इसीलिए भारतेन्दु बाबू युग-प्रवर्तक कहे जाते है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की विचारधारा उनके साहित्य में पूर्ण रूप से लक्षित होती है। उनके साहित्य को समझने के लिए हम उनकी विचारधारा को तीन रूपों में विभाजित कर सकते हैं—आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनैतिक।

१—आध्यात्मिक विचारधारा

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, जैसा कि उनकी जीवनी से स्पष्टतः ज्ञात होता है, वैष्णव कुल में उत्पन्न हुए थे। अतः वल्लभी सम्प्रदाय का अनुयायी होना उनके लिए स्वाभाविक ही था। उनके भक्त हृदय के प्रतीक लगभग दो सहस्र पदो और फुटकर रचनाओं से प्रकट होता है कि वह अष्ट छाप परम्परा के अन्तिम महान कवि हैं। उन्होंने बल्लभाचार्य की स्तुति तथा प्रशंसा अपनी अनेक रचनाओं में की है।

'जे जन अन्य आसरौ तजि श्री विट्ठलनाथहि गावैं।
ते बिनु श्रम थोरेहि साधन मैं भव सागर तरि जावैं॥
जे निसदिन श्री विट्ठल विट्ठल विट्ठल ही मुख भाखैं।
'हरीचंद' तिनके पद की रज हम अपुने सिर राखैं॥'

अतः भारतेन्दु जी वल्लभकुल में दीक्षित कृष्ण-भक्त थे। उन्होंने अपनी सबसे प्रथम कविता में अपनी भक्ति-भावना को व्यक्त किया है। देखिए—

'हम तो मोल लिये या घर के।
दास दास श्री वल्लभ कुल के चाकर राधावर के॥
माता श्री राधिका पिता हरि बन्धुदास गुनकरके।
'हरीचंद' तुमरे ही कहावत नहिं विधि के नहिं हरके॥'

इस प्रकार भारतेन्दु जी युगल-मूर्ति के उपासक थे। गोपाल-मन्दिर की अधिष्ठात्री तथा गिरधर जी महाराज की सुपुत्री श्यामा बेटी के उपदेशों का भारतेन्दु जी पर काफी प्रभाव पड़ा था।

'हम चाकर राधारानी के।
ठाकुर श्री नँदनंदन के, वृषभानु लली ठकुरानी के॥

निरभय रहत बदत नहिं काहू डर नहिं डरत भवानी के।
'हरीचंद' नित रहत दिवाने सूरत अजब निवानी के॥'

यही नहीं, उन्होने तो स्थान-स्थान पर अपने प्रेम का परिचय दिया है। देखिए—

'सरवरु रसिक के मुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के।'

अनन्य वैष्णव होने के कारण भारतेन्दु जी ने माधो को सर्व-शक्तिमान मानकर उनका ही गुणगान किया है। 'प्रेम प्रलाप' में उनकी अनन्यता के एक पद की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'मेरे भाई प्रान-जीवन-धन माधो।
नेम धरम व्रत जप तप सबही जाके मिलन अराधो।'

यही नहीं, उनकी समस्त रचनाओं में 'गोपाल प्रेम' कूट कूट कर भरा है। चन्द्रावलि नाटिका में एक अलौकिक प्रेम का वर्णन है। नांदी पाठ के अन्तर्गत आया हुआ पद इसी प्रेम को व्यक्त करता है। देखिए—

'नेति - नेति तत् - शब्द प्रतिपाद्य सर्व भगवान्।
चन्द्रावली चकोर श्रीकृष्ण करौ कल्यान॥'

भक्ति दो प्रकार की होती है—वैधी और रागानुगा भक्ति। वैधी भक्ति शास्त्रों के विधि निषेध का अनुसरण करती है। रागानुगा भक्ति प्रेम, राग और भावना पर निर्भर है। चन्द्रावली का प्रेम रागानुगा भक्ति के ही अन्तर्गत आता है। भारतेन्दु जी भी इसी भक्ति के अनुयायी हैं। इसीलिए वह नारद जी के मुख से अपने हृदय के उद्गारों की मधुर व्यजना कैसे अलौकिक ढङ्ग से करते हैं। देखिए—

'ब्रज के लता पता मोहिं कीजै।
गोपी पद पंकज पावन की रज जामैं सिर भीजै॥
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै।
श्री राधे राधे मुख, यह वर मुँह माँग्यौ हरि दीजै॥'

पुष्टिमार्गीय भक्ति में लीला विशेष महत्व रखती है। यह ईश्वरोपासना का ही एक रूप है। भारतेन्दु जी पुष्टिमार्गी थे। उन्होंने अपनी अलौकिक

भावना को अत्यन्त सुन्दर ढँग से प्रकट किया है। देखिए—

'नैना वह छवि नाहिं न भूले।
दया भरी चहुँ दिसि चितवन नैन कमल दल फूले॥
वह आवनि वह हँसनि छबीली वह मुसकनि चित चोरें।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह देखन चहूँ कोरें॥
वह धीरी गति कमल फिरावत कर लै गायन पाछे।
वह वीरी मुख वेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
परवस भये फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे।
हरि ससि मुख ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारे'

भारतेन्दु जी की समस्त रचनाओं में वैष्णवता कूट-कूट कर भरी है। 'भक्त-सर्वस्व' में राधा-कृष्ण के चरण-चिह्नों का सुन्दर वर्णन है। उसमें उनकी कल्पनाएं अत्यन्त कोमल, सरस तथा साहित्यिक हैं। भारतेन्दु जी की दृष्टि में वेदान्तवाद तथा शुष्क ज्ञान, भक्ति की तुलना में कोई महत्व नहीं रखते हैं—

'मरौ ज्ञान वेदांत को, जरौ कर्म को जाल।
दया दृष्टि हम पै करौ, एक नन्द के लाल॥'

उनके 'वैष्णव सर्वस्व' में कृष्ण-भक्तों का उल्लेख है। 'वल्लभीय सर्वस्व' में श्री वल्लभाचार्य का चरित है। 'युगल सर्वस्व' में कृष्ण लीला, सखा, सखी आदि का नाम रूप वर्णन है। 'मार्गशीर्ष महिमा', 'पुरुषोत्तम-मास विधान', 'कार्तिक नैमित्तिक कृत्य', 'कार्तिक कार्यविधि', 'वैशाख महात्म्य', 'उत्सवावली' आदि की रचनाओं में वैष्णव धर्म पर ही प्रकाश डाला गया है। 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल', 'शांडिल्य', 'शांडिल्य सूत्र की भाषा', 'तदीय-सर्वस्व' आदि ग्रन्थ भी वैष्णव धर्म पर ही प्रकाश डालते हैं। भारतेन्दु जी पक्के वैष्णव थे। इसीलिए उन्होने आर्य समाज और ब्रह्म समाज के आंदोलनों का बड़ी सतर्कता और तीव्रता के साथ विरोध किया। उनका दृष्टिकोण वैष्णव धर्म में ही नवीनता और उदारता का समावेश करने का था। वैष्णव धर्म की आलोचना उन्हें सहन नहीं थी। इसीलिए उन्होंने अपने एक पद में वैष्णव धर्म के विरोधियों को 'महामूढ़' कहा है। देखिए—

'खेलन में कबहूँ जो आँचर उड़त बातबस जाको।
रिसि मुनि पंडित हू हरि मानत परम धन्य करि ताको॥
परम पुरुष जो जग्य तप क्यों हूँ लख्यौ न जाई।
सो जो पद रजबस निसिबासर तुरतहि प्रगटत आई॥
ग्राम बधूटी जा कटाच्छ बस उमा रमाहिं लजावै।
'हरीचन्द' ते महामूढ़ जे इनहिं न अनुछिन ध्यावै॥'

भारतेन्दु जी के समय में ब्रह्म समाज, आर्य समाज और ईसाई धर्म के अनुयायी पूर्ण रूप से हिन्दू धर्म का विरोध कर रहे थे। भारतेन्दु जी ने लेखों तथा व्याख्यानो द्वारा हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता बताई। इस प्रकार यदि उन्हें 'नवीन हिन्दूमत' की नींव डालने वाला कहा जाए, तो अत्युक्ति न होगी। उन्होंने अपने 'ईश खीष्ट और ईश कृष्ण' नामक निबन्ध में लिखा था कि पाश्चात्य सभ्यता भारतीय सभ्यता की ऋणी है। देखिए—

'संसार के धर्माचार्य मात्र ने भारतवर्ष की छाया से अपने-अपने ईश्वर, देवता, धर्म पुस्तक, धर्मनीति और निज चरित्र का निर्माण किया है। संसार के सब देवता भी भारतवर्ष ही के देवगण की छाया हैं। नीति सम्बन्धी भी यावत गल्प भाग इसी भारतवर्ष से फैलकर और स्थानों पर गई है।'

भारतेन्दु जी किसी धर्म के कट्टर विरोधी भी न थे। 'कुरानशरीफ' और 'कुरान दर्शन चक्र' से उनकी सहानुभूति का परिचय मिलता है। वे सभी धर्मों में समान रूप से विश्वास रखते थे। संकुचित मनोवृत्ति और अंध-विश्वास से मुक्त थे।

'खंडन जग में काको कीजै।
सब मत तौ अपने ही हैं इनको कहा उत्तर दीजै॥'

× × ×

'नहिं इन झगरन में कछु सार।
क्यों लरि लरिकै मरौ बावरे बादन फोरि कपार॥'

सारांश यह है भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र पक्के पुष्टिमार्गी कवि थे। वे मायावाद, वेदांत और कर्म-काण्ड के विरोधी थे। उन्होंने अपनी इस विरोधी भावना को 'कहो अद्वैत कहाँ सों आयौ' और 'जो पै सबै ब्रह्म ही होय' आदि

पदों में व्यक्त किया है। इस प्रकार भारतेन्दु जी की दृष्टि में वेदांतवाद ही भारत के पतन का कारण था। उनकी भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ बाल-चित्रण, विनय, राधाकृष्ण के प्रेम, मान, वियोग आदि से भरी पड़ी हैं। अतः उनकी भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है। वे अष्टछाप परम्परा के अन्तिम महान कवि कहे जाएंगे।

२—सामाजिक विचारधारा

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी-नवोत्थान के प्रतीक ही नहीं थे, वरन् नवयुग के संदेशवाहक भी थे। अपने युग के महापुरुष, स्वामी दयानन्द तथा राजा राममोहनराय की भाँति ही उन्होने भी पतन की ओर अग्रसर होते हुए हिन्दू समाज की उन्नति का बीड़ा उठाया था। उन्होंने व्याख्यानों और लेखों द्वारा हिंदू धर्म समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का अथक प्रयास किया। यह सत्य है कि स्वामी दयानन्द तथा राजा राममोहनराय की भाँति भारतेन्दु किसी नये समाज की स्थापना नहीं कर सके परन्तु उनको समाजोपयोगी विचार फैलाने में पूर्ण सफलता मिली। वे उदार भाव के व्यक्ति थे। इसलिए वह एक नये समाज की स्थापना के पोषक न थे वरन् हिंदू समाज में ही नवीनता और प्राचीनता का समन्वय करके सामाजिक उन्नति चाहते थे। वैसे तो उन्होंने 'तदीय समाज' नाम की संस्था की स्थापना भी की किन्तु इस संस्था का उद्देश्य प्रेम का प्रचार करना था जैसा कि उनके शब्दों से प्रकट होता है—

'यद्यपि इस समाज से जगत और मनुष्यों से कुछ सम्बन्ध नहीं तथापि जहाँ तक हो सकेगा शुद्ध प्रेम की वृद्धि करेगा और हिंसा के नाश करने में प्रवृत्त रहेगा।'

भारतेन्दु जी ने इस समाज के 'प्रतिज्ञापत्र' को स्वयं बनाया था। आगे चलकर इस संस्था ने दो एक कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण किये। 'गो-रक्षा' के लिये 'गो-महिमा' आदि ग्रन्थ भी प्रकाशित किये गये। स्थान-स्थान पर गो-शालाओं और गो-रक्षिणी सभाओं की स्थापना होना उनके प्रयास का ही फल दिखाई देता है। इस संस्था ने मद्य और माँस निषेध के प्रचार के लिए लाखों व्यक्तियों से प्रतिज्ञा-पत्र भरवाये। यही नहीं देशी वस्तुओं के प्रयोग

के आंदोलन का प्रारम्भ भी इसी समाज के द्वारा हुआ।

भारतेन्दु जी नवीनता तथा प्रगतिशील जीवन के पक्षपाती थे। वे जानते थे कि अंगरेजी शिक्षा समाजोपयोगी है। इस विचार से उन्होंने सन् १८६७ ई० में 'चौखम्बा स्कूल' की स्थापना की जो आज हरिश्चन्द्र हाईस्कूल के नाम से प्रसिद्ध है। भारतेन्दु जी आडम्बर के तीव्र विरोधी थे। 'प्रेम-योगिनी' नाटिका में उन्होंने तीर्थवासी ब्राह्मणों और मन्दिरों का रहस्योद्घाटन पूर्ण रूप से किया है। उन्हें गुण सभी समाजों के उत्तम लगते थे। इसीलिए उन्होंने 'जैन-कुतूहल' और 'अंगरेजी-स्तोत्र' आदि रचनाएं कीं। ब्राह्मणों का विरोध तो उन्होंने बड़ी सतर्कता और तीव्रता से किया—

'बिधवा-ब्याह निषेध कियो, बिभिचार प्रचारयौ।
रोकि विलायत गमन कूप मंडूक बनायौ॥
औरनि को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायौ।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब विमुख किए हिंदुन घबराई।
अपरस सोल्हा छूत रचि भोजन प्रीति छुड़ाई।
किए तीन तेरह सबै चौका-चौका लाई॥'

इससे प्रकट होता है कि भारतेन्दु नवीनता के पोषक थे। उनकी दृष्टि समाज के छोटे-छोटे दुर्गुणों पर भी गयी थी। उन्होंने उन दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास किया। भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों की रचना भारतीय समाज को उन्नति के पथ पर लाने के लिए की थी। 'नीलदेवी' नाटक में उन्होंने भारतीय स्त्रियों को अंगरेजी महिलाओं की भाँति सतर्क एव निर्भीक होने का आदेश दिया है। 'वैदिकी हिंसा' में आडम्बर करने वाले वैष्णवों के दुर्गुणों पर प्रकाश डालते हुए उन्हें धर्म के तत्त्व को समझने का उपदेश दिया है। मदिरा-निषेध के लिए उनके दोहे कैसे सुन्दर हैं—

'वैष्णव लोग कहा वहीं कण्ठी मुद्रा धारि।
छिप छिप के मदिरा पियहिं यह जिय माँझि विचारि॥'

होटलों में मदिरा-सेवियों को देखिए—

'होटल में मदिरा पियें चोट लगे नहिं लाज ।
लोट लए ठाड़े रहत, होटल दैवे काज ॥'

यही नहीं, उन्होंने धनिक व्यक्तियों को भी नहीं छोड़ा है ।

'राजा, राजकुमार मिलि, बाबू लीने संग ।
बार-बधुन ले बाग में, पीअत भरे उमंग ॥'

'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु जी ने एक पक्के सुधारक का रूप धारण कर लिया है । शैव, शाक्त, वैष्णवों के मतमतान्तर, खान-पान में भेद, ऊँच-नीच का भेद, बाल-विवाह, बहु विवाह, विधवा विवाह, बहु-देव पूजा आदि सामाजिक दोषों की ओर उन्होंने जनता का ध्यान आकर्षित किया ।

भारतेन्दु जी ने 'देखी तुमरी कासी' लिखकर काशी-वासियों को सुधार-वाद की ओर आकर्षित किया है—

'मैली गली भरी कतवारन सड़ी चमारिन पासी ।
नीचे नल से बदबू उवलै मनो नरक चौरासी ॥'

सम्पन्न व्यक्तियों के लिए उनकी फटकार देखिए—

'अमीर सब झूठे औ निदंक करें घात विश्वासी ।
सिपारसी डरपुकने, सिट्टू बोलें बात अकासी ॥'

मध्यम-वर्ग के विलास प्रिय व्यक्तियों को उन्होंने किस प्रकार उपदेश दिया है—

'घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी ।
दाल की मंडी रंडी पूजें मानो इनकी मासी ॥'

अतः हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र सच्चे समाज-सुधारक थे । वह भारतीय समाज में एक नवीन क्रांति उत्पन्न करना चाहते थे । धर्म के पाखंडियों से उन्हें पूर्ण घृणा थी । विधवाओं की दुर्दशा, बहु-विवाह प्रथा, मद्य-प्रचार, हिन्दू स्त्रियों की हीन दशा को देखकर उनका हृदय पीड़ा का अनुभव करता था । इसीलिए उनकी आंतरिक इच्छा थी कि हिन्दू समाज में जागृति हो । इस प्रकार भारतेन्दु जी ने समाजोत्थान के लिए अथक परिश्रम किया । अनेक सामाजिक संस्थाओं को जन्म दिया । यही नहीं पत्र-पत्रिकाओं तथा अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने सुधार के आंदोलनों को

जन्म देकर अवनति के गर्त की ओर अग्रसर होते हुए हिन्दू समाज का कल्याण किया। उनका नाम समाज सुधारक के रूप में भी भारतीय इतिहास में अमर रहेगा।

३—राजनैतिक विचारधारा

हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दु जी केवल साहित्यकार ही नहीं थे वरन् युग-नेता भी थे। उन्होंने भक्ति-पूर्ण, समाज सुधारक कविताएँ ही नहीं लिखीं वरन् राष्ट्र-प्रेम से अनुप्राणित रचनाएँ भी कीं जो एक ओर भारत के स्वर्णिम अतीत का गुण-गान करती हैं, तो दूसरी ओर भारतवासियों को अनागत में प्रगतिशील पथ को अपनाने का दिव्य सन्देश देती हैं। भारतेन्दुजी के पिता बाबू गोपालचन्द अँगरेजों के अत्यन्त कृपापात्र और विश्वासपात्र थे। सन् १८५७ के विद्रोह में बनारस की रेजीडेन्सी का सामान उन्हीं के यहाँ रक्खा गया था। वह अत्यन्त धनवान तथा सम्पन्न व्यक्ति थे। अतः यह सत्य है कि भारतेन्दुजी एक दरबारी वातावरण में पोषित हुए थे। दरबारी वातावरण में राजभक्ति का बोलबाला था। इस प्रकार राजभक्ति की दीक्षा भारतेन्दुजी को पूर्ण रूप से मिल गयी थी। इसी कारण भारतेन्दुजी के प्रारम्भिककाल म राजभक्ति की अनेक रचनाएँ मिलती हैं। सन् १८६९ ई० में महारानी विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक आफ एडिन्बरा भारत में पधारे थे। यहाँ वे प्रमुख-प्रमुख नगरों में गये। कार्तिक की पूर्णिमा को काशी में भारतेन्दुजी द्वारा उनका भव्य स्वागत किया गया। उस समय उन्होंने गृह की सजावट अत्यन्त ही सुन्दर ढंग से की जिसकी ड्यूक ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। भारतेन्दुजी ने ड्यूक की प्रशंसा में निम्नलिखित कवित्त बनाया था। इसमें पूर्णिमा के चन्द्रमा से ड्यूक को उच्चतर सिद्ध किया गया है—

'वाको जन्म जल या को रानी कोख सागर तें,
यह सकलकी यामें छींट हूँ न आई है।
यह नित घटै यह बाढ़ै दिन-दिन वह,
विरही दुखद यह जन्म-सुखदाई है।

जानि अधिकाई सब भाँति राजपुत्र ही की,
गहन के मिस यह मति उपजाई है।
देखि आज उदित प्रकाशमान भूमिचन्द,
नभ ससि लाज मुख कालिमा लगाई है।'

सन् १८७१ ई० में प्रिंस ऑव वेल्स के अस्वस्थ होने पर उनकी आरोग्य-कामना के लिए भारतेन्दुजी ने नौ दोहे में ईश्वर प्रार्थना की थी। उन दोहों में से अन्तिम दोहा निम्नलिखित है—

'वेग सुनै हम कान सों, प्रिंस भए सानंद।
परम दीन ह्वै, जोरि कर, यह विनवत हरिचन्द।'

सन् १८७७ ई० में महारानी विक्टोरिया के भारत-सम्राज्ञी की पदवी ग्रहण करने पर भारतेन्दुजी ने भारत की लगभग सभी भाषाओं में 'मानसोपायन' नामक ग्रन्थ संग्रहीत करके प्रकाशित किया था। यह ग्रन्थ युवराज को भेंट किया गया था। राजकुमार को स्वागत पत्र भी भेट किया था और साथ ही कुछ आशीर्वादात्मक दोहे भी लिखे थे जिनमें से अन्तिम दोहा इस प्रकार है :—

'भ्रात मात सह सुतन युत प्रिया सहित युवराज।
जियो-जियो जुग-जुग जियो, भोगो सब सुख साज।'

सन् १८७६ ई० में अफगान युद्ध छिड़ने पर भारतेन्दुजी ने 'भारत वीरत्व' नामक काव्य की रचना करके भारतीय नरेशों को अङ्गरेजों की सहायता देने के लिए प्रार्थना की थी। देखिए :—

'जिन जवनन तुव धरम नारि धन तीनिहुँ लीनो।
तिनहू के हित आरजगन निज असु तजि दीनो॥
तौ इनके हित क्यों न उठहु सब वीर बहादुर।
पकरि-पकरि तरवार लरहु बनि युद्ध चक्रधुर॥'

तदनन्तर अफगान युद्ध में विजय प्राप्त होने पर भारतेन्दुजी ने 'विजय-वल्लरी' की रचना की थी। सन् १८८३ ई० इङ्गलैंड में 'नेशनल ऐन्थेम सोसाइटी' की स्थापना हुई। इनकी लिखी ऐन्थेम निम्नलिखित थी—

'प्रभु रच्छहु दयाल महरानी।
बहु दिन जिए प्रजा सुखदानी।
हे प्रभु रच्छहु श्री महरानी।
सब दिस में तिनकी जय होई।
रहे प्रसन्न सकल भय खोई।
राज करैं बहु दिन लौ सोई।
हे प्रभु रच्छहु श्री महरानी।'

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्तुजी की प्रारम्भिक रचनाओं में राज-भक्ति पूर्णरूप से मिलती है। आगे चलकर भारतेन्दुजी की रचनाओं में राष्ट्रीयता का पुट पर्याप्त मात्रा में दिखाई देता है। इसके दो कारण हो सकते हैं। प्रथम यह है कि वह स्पष्टवादी थे। दूसरे वह अँगरेजी सरकार की शतरंजी चालों से पहले अनभिज्ञ थे। आगे चलकर उनकी यह धारणा हो गयी थी कि बिना अँगरेजी शासन से मुक्ति पाये देश की उन्नति नहीं हो सकती है। इसलिए ही उन्होंने अँगरेजी राज्य का गुणानुकीर्तन करते हुए भी दोष कहे हैं। देखिए :—

'अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी॥
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी।
दिन-दिन दूने दुख ईस देत हा हा री॥'

भारतेन्दुजी इस बात के पक्ष में थे कि अपने मनोरथ की सिद्धि प्रेम से की जाए न कि बल से। एक बार सर विलियम म्योर काशी आये थे, उस समय उनका स्वागत करते हुए प्रजा को टिकट के कर से मुक्त करने के लिए उन्होंने निम्न लिखित दोहा लिखा था :—

'स्वागत-स्वागत धन्य प्रभु श्री सर विलियम म्योर।
टिकस छुड़ावहु सबन को विनय करत कर जोर॥'

आगे चलकर भारतेन्दु जी ने अंगरेजों की नीति को पूर्ण रूप से समझ लिया और उस पर सीधी भाषा में टीका करने लगे। नीचे की कुछ पहेलियों

में उन्होंने अँगरेजी शासन की कैसी स्पष्ट टीका की है—

'भीतर - भीतर सब रस चूसै,
हँसि-हँसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
कह सखि साजन नहिं अँगरेज।।
नई - नई नित तान सुनावै,
अपने जाल में जगत फँसावै।
नित - नित हमें करे बल सून,
क्यों सखि साजन नहिं कानून।।
इनकी उनकी खिदमत करो,
रुपया देते - देते मरो।
तब आवै मोहि करन खराब,
क्यों सखि साजन नहीं खिताब।।
धन लेकर कछु काम न आवै,
ऊँची - नीची राह दिखावै।
समय पड़े पर साधे गुङ्गी,
क्यों सखि साजन नहिं सखि चुङ्गी।।
मतलब की ही बोले बात,
राखे सदा काम की पात।
डोलै पहिने सुन्दर समला,
क्यों साजन नहिं सखि अमला।।'

स्पष्ट है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी का राष्ट्रीयता के मूल प्रवर्तकों में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके काव्य में उत्कृष्ट देश-भक्ति और सच्ची राष्ट्रीयता की पावन झाँकी होती है। देश की नव जागृति और नव चेतना की ओर उनका पूर्ण ध्यान गया था। भारत की तत्कालीन परिस्थिति को देखकर उन्हें भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण हुए बिना नहीं रहता था, प्राचीन भारतीय वीरों तथा उनकी कीर्ति का स्मरण कर उनके हृदय में देश प्रेम की भावना जाग्रत होने लगती थी। भारत की दुर्दशा पर वह अत्यन्त क्षोभित

होकर कहते हैं—

'रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ॥'

एक समय था जब भारत की कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त थी। आज वह परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ा हुआ है—

'हाय वहै भारत भुव भारी। सबही विधि सो भयो दुखारी।'

भारत के सुख के दिन कहाँ चले गये ? ऐसा प्रतीत होता है मानों विधाता रूँठ गया हो।

कहा करी तकसीर तिहारी। रे बिधना भारतहि दुखारी ॥
सोइ भारत की आज, यह भई दुरदशा हाय।
कहा करैं कित जायँ, नहिं सूझत कछू उपाय ॥'

भारत की दुर्दशा का तो उन्होंने चित्र खींच दिया है। जिसे पढ़कर कठोर से कठोर हृदय वाला व्यक्ति आँसू बहाये बिना नहीं रह सकता है। देश-व्यापीय दुर्दशा को देखिए—

'काशी प्राग अयोध्या नगरी। दीन रूप सम ठाड़ी सगरी।
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई। रही सबै भुव मुँह मसि लाई।
हाय पंचनद ! हा पानीपत। अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत।
हाय चित्तौर ! निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहि मँझारी।
जा दिन तुव अधिकार नसायो। सो दिन क्यों नहिं धरनि समायो।
तुम में नहिं जल जमुना गंगा। बढ़हु बेग करि तरल तरंगा।
धोवहु यह कलंक की रासी। बोरहु किन झट मथुरा कासी।
कुस कन्नौज अंग अरु बगहि। बोरहु किन निज कठिन तरंगहि।
अहो भयानक भ्राता सागर। तुम तरंग निधि अति बल आगर।
बढ़हु न बेगि धाइ क्यों भाई। देउ भरत भुव तुरत डुबाई।
घेरि छिपावहु विंध्य हिमालय। करहु सकल जल भीतर तुम लय।
धोवहु भारत अपजस पंका। मेजहु भारत भूमि कलका।'

क्षोभ, अधैर्य, द्वेष, विषाद आदि का कैसा अनुपम समन्वय है। उपर्युक्त

पंक्तियों में चित्तौड़, पंचनद, काशी, अयोध्या आदि का नाम लेकर देश-प्रेम की भावना का कैसा परिचय दिया है। देश प्रेमी के लिए देश की दुर्दशा असहनीय है। इसलिए वह देश के उद्धार के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं—

'कहाँ करुना निधि केसव सोए !
जागत नेक न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोए।
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारतहित बिसराए।
इसके पसु गज को आरत लखि आतुर प्यादे धाए।
इक-इक दीन हीन नर के हित तुम दुख सुनि अकुलाई।
अपनी सम्पति जानि इन्हहिं तुम गह्यो तुरंतहि धाई।
प्रलय काल सम जौन सुदरसन असुर प्रान संहारी।
ताकी धार भई अब कुण्ठित हमरी बेर मुरारी।
दुष्ट जवन बरबर तुव संतति घास साग सम काटैं।
एक-एक दिन सहस-सहस नर सीस काटि भुव पाटैं।
हैं अनाथ आरत कुल बिधवा बिलपहिं दीन दुखारी।
बल करि दासी तिनहिं बनावहिं तुम नहिं लजत मुरारी।
कहाँ गए सब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई।
भक्त बछल करुनानिधि तुम कहँ गायो बहुत बनाई।
हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यों परम दयाल कहाई।
सब विधि बूड़त लखि निज देसहिं लेहु न अबहुँ बचाई।'

कहने का तात्पर्य यह है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने देशोन्नति के लिए एक ओर सरकारी निरंकुशता का विरोध किया तो दूसरी ओर आलसी, निरुद्यम और पतनोन्मुख देशवासियों को जागरण का दिव्य संदेश दिया। हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति के लिए भारतेन्दु जी ने अथक परिश्रम किया। उनका विचार था कि बिना हिन्दी की उन्नति के राष्ट्र-उन्नति होना असम्भव है—

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषाज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥'

'चहहु जो साँचहु निज कल्यान।
तौ मिलि सब भारत सन्तान।
जपौ निरन्तर एक जबान।
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान॥'

\+ + +

'करहु विलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल।
लहहु आर्य भ्राता सबै विद्या बल बुधि-ज्ञान।
मेटि परस्पर द्रोह मिलि होहु सबै गुन खान॥'

उपर्युक्त रचनाओं से पूर्णतः सिद्ध होता है कि भारतेन्दु जी सच्चे देश-प्रेमी थे। उन्होंने देशोन्नति के लिए नई भावधारा और मौलिक उद्भावनाओं को जन्म दिया, साहित्य को लोक-जीवन का विषय बनाया। उनके अमर कथन अत्यंत सारगर्भित तथा उनकी हार्दिक आकांक्षाओं के द्योतक हैं। उनकी हार्दिक इच्छा यही थी कि भारतवासी पूर्ण रूप से उन्नति करें और पूर्ण सुख प्राप्त करें।

'लहौ सुख सब विधि भारतवासी।
विद्या कला जगत की सीखौ तजि आलस की फाँसी॥
अपनो देश धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी।
उद्यम करिकै एक मति निज बल बुद्धि प्रकासी॥
पचपीर की भगति छाँड़ि कै हौ हरिचरन उपासी।
जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुन रासी॥'

इस प्रकार भारतेन्दु जी की विचारधारा के तीन मार्ग हुए—आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनैतिक। तीनों ही धाराएँ भारतेन्दु साहित्य में पूर्ण रूप से विकसित हुई हैं।

प्रश्न ४—'भारतेन्दु जी का ईश्वरोन्मुख-प्रेम' शीर्षक पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

उत्तर—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र प्रकृत्यः-प्रेमी जीव थे। उनका जीवन

प्रेममय था। उनकी रचनाओं से उनकी भक्ति तथा उनकी दिव्य प्रेम-भावना का पूर्ण परिचय मिलता है। भारतेन्दु जी के मतानुसार प्रेम के बिना जीवन नीरस है। प्रेम ही गीत तथा प्रेम ही सरस राग है। सारा संसार प्रेम-सूत्र में ही बँधा है—

'बँध्यौ सकल जग प्रेम में, भयो सकल करि प्रेम।
चलत सकल लहि प्रेम को, बिना प्रेम नहिं छेम।।'

इस प्रकार ससार में प्रेम ही सर्वस्व है। यदि अन्धकारपूर्ण हृदय को कोई आलोकित करने वाली वस्तु है तो, प्रेम। यदि हृदतन्त्री के उलझे हुए तारों को सुलझाने का कोई साधन है, तो प्रेम। यदि मुरझाई हुई आशा-कलिका को विकसित करने की किसी मे शक्ति है, तो प्रेम में। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम ही माधुर्य और प्रेम ही रस है। सत कबीरदास जी ने भी यही कहा है।

'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय।।'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी भी इसी प्रेम के पक्ष में थे। देखिए—

'दपति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा-ध्यान।
इनसों परे बखानिए, शुद्ध प्रेम रस खान॥
डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होन।
रहै एक रस चाहि कै प्रेम बखानौ कोन॥'

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु जी के जीवन का केन्द्र-विन्दु प्रेमाधारित भक्ति ही थी जिसे दूसरे शब्दो में हम ईश्वरोन्मुख प्रेम की संज्ञा दे सकते हैं। यद्यपि वह अत्यन्त रसिक थे। माधवी और मल्लिका नाम की दो स्त्रियों से उनके अनुचित प्रेम का उल्लेख भी मिलता है। किन्तु इस भौतिक प्रेम की सीमा से परे उन्होंने एक सच्चा प्रेम पाया था। उनके लगभग डेढ़ सहस्र पद वैष्णव भक्ति से परिपूर्ण हैं। इन पदों का विषय ही राधाकृष्ण लीला का वर्णन है। बाल-लीला, राधाकृष्ण-प्रेम विलास, रूप-वर्णन, मान, बशी, विरह, संयोग, भ्रमरगीत आदि से सम्बन्धित पद उनके भक्ति-हृदय के द्योतक हैं। उनकी अधिकांश रचनाओं में भक्ति का चित्रण अत्यन्त ही आक-

पक एवं सरस ढग से हुआ है। उनके ग्रन्थ 'प्रेम-मालिका' में कीर्तन, लीला विनय आदि के सौ पदों का संग्रह है। 'प्रेम-सरोवर' में प्रेम पथ की कठिनाइयों, प्रेम के महत्व आदि का उल्लेख है। इसमें केवल इकतालीस दोहों में 'चातक अभिमानी' कवि ने अक्षय तृतीया के दिन अपनी 'पिपासा' की शांति के लिए 'जल' की याचना की है। 'प्रेमाश्रुवर्षण' में छियालीस पदों में कवि ने युगलस्वरूप की प्रेम क्रीड़ा आदि का अनुपम वर्णन किया है—

'आजु तम भीजें बसनन सोहैं।
देखि लेहु लोचन सोभा जुगल अरी मन मोहैं॥'

'प्रेम माधुरी' मे प्रेम की व्यजना अत्यन्त ही अनुपम ढँग से हुई है। प्रेम का ऐसा उत्कृष्ट, मधुर तथा सरस वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

'पिया प्यारे बिना यह माधुरी मूरति औरन को अब पेखिये का।
सुख छाँड़ि कै सगम को तुमरे इन तुच्छन को अबलेखिये का॥
'हरिचद' जू होरन को बेवहार कै काँचन को लै परेखिये का।
जिन आँखिन में तुवरूप बस्यौ उन आँखिन सो अब देखिये का॥'

भारतेन्दु जी के हृदय में एवं आँखों में तो श्रीकृष्ण जी की ही माधुरी मूर्ति बसी थी, वह तो भक्त और भगवान के एकाकार में ही विश्वास रखते थे—

'कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय,
हिय में न जानी परै कान्ह है कि प्रान है'

इसी प्रकार उनके 'प्रेम तरंग' में भी कृष्ण-प्रेम का वर्णन है। इसमें कवि राधा कृष्ण तथा गोपियो के वासनामय प्रेम का चित्रण भी कर गया है, फिर भी आधार कृष्ण-कथा ही है। इसमें बँगला गान तथा उर्दू की गजलें भी हैं। अलौकिक प्रेम की ओर भी संकेत मिलता है—

'बिना उसके जल्वा के दिखाती कोई परी या हूर नहीं।
सिवा यार के, दूसरे का इस दुनियाँ में नूर नहीं॥
जहाँ में देखो जिसे खूबरू वहाँ हुस्न उसका समझो।
झलक उसी की सभी माशूकों में यारो मानो॥
जहाँ कोई खुशगुलू मिलै तुम वहाँ उसी का बोल सुनो।

जुल्फों को भी उसी का पेच समझ कर आके फँसो।
नशीली आँखें वहाँ नहीं हैं जहाँ मेरा मख्मूर नहीं॥'

'प्रेम-प्रलाप' में कृष्ण के प्रति विनय, प्रेम आदि का वर्णन है। इसके अतिरिक्त 'विनय प्रेम पचासा', 'दैन्य प्रलाप', 'वेणु गीत', 'पुरुषोत्तम पचक' 'कृष्ण चरित', 'भक्त-सर्वस्व' आदि में ईश्वर भक्ति का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। 'चन्द्रावली नाटिका' में भी एकनिष्ठ प्रेम का निरूपण किया गया है। अग्र लिखित ललिता और जोगिन के सवाद में उनकी मधुर और सरस प्रेम की पावन झाँकी देखिए—

ललिता—कहाँ तुम्हारो देश है?
जोगिन—प्रेम नगर पिय गाँव।
ललिता—कहा गुरू कहि बोलिहो?
जोगिन—प्रेमी मेरो नाँव।
ललिता—जोग लियो केहि कारनैं?
जोगिन—अपने पिय के काज।
ललिता—मंत्र कौन?
जोगिन—पिय नाम इक।

भारतेन्दु जी ने स्वयं समर्पण में लिखा है—

'प्यारे तो तुम्हारी चंद्रावली तुम्हें समर्पित है, इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो ससार में प्रचलित है।' नान्दी पाठ के अन्तर्गत दिया गया पद भी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की इसी भावना को प्रकट करता है—

नेति नेति तत्-शब्द पतिपाद्य सर्व भगवान्।
चन्द्रावली चकोर श्रीकृष्ण करौ कल्यान॥

भक्ति दो प्रकार की होती है—वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति शास्त्रों के विधि-निषेध का अनुसरण करती है। रागानुगा शुद्ध प्रेम और भावना पर आधारित होती है। चंद्रावली रागानुगा भक्ति की ही उपासिका है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु जी की रचनाओं में भक्ति का पुट पर्याप्त मात्रा में है। गोपाल की मूर्त्ति का सुन्दर तथा माधुर्य-पूर्ण वर्णन

देखिए—

'सकल की मूलमयी बेदन की भेदमयी,
ग्रन्थन की तत्वमयी बादन के जाल की।
भव बुद्धि सीमामयी सृष्टिहु की आदिमयी,
देवन की पूजामयी जीवनमयी काल की॥
ध्यानमयी ज्ञानमयी सोभामयी सुखमयी,
गोपी-गोप-गाय ब्रज-भागमयी भाल की।
भक्त अनुरागमयी, राधिका सुहागमयी,
प्राणमयी, प्रेममयी मूरति गोपाल की।'

वह जो कुछ ससार में करना चाहते थे, वह केवल गोपाल के लिए :—

'माँगो तो गुपाल सो न माँगो तो गुपाल ही सों,
रीझौं तो गुपाल पै औ खीझौं तो गुपाल सों।'

गोपाल के अनन्य भक्त होते हुए भी भारतेन्दु जी का प्रेम सर्वतोमुखी था। 'वैष्णवता और भारतवर्ष' के निबन्ध में उन्होंने उपासना की परिभाषा बहुत सुन्दर रूप से दी है :—उपासना एक हृदय की रत्न वस्तु है उसको आर्यक्षेत्र में फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। धर्म सम्बन्धी उपाधियों को छोड़कर प्राकृत धर्म की उन्नति करो। उनको दृष्टि में सभी धर्मों की उपासना-विधि ग्राह्य थी।

सारांश यह है कि भारतेन्दुजी आधुनिक युग के प्रवर्तक होते हुए भी भक्तियुग के कवियों से टक्कर लेते हैं। साहित्याचार्यों के अनुसार वह अष्ठछाप के अन्तिम महान कवि गिने जाएँगे। उनकी रचनाओं में भक्त हृदय के उद्‌गार हैं जो पाठक के हृदय को स्पर्श किये बिना नहीं रहते हैं। उन्होंने कविता का श्रीगणेश ही पाँच वर्ष की अवस्था में भक्ति से ही किया था।

'ले व्योंड़ा ठाड़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान॥'

मृत्यु-शैया पर पड़े भक्त हृदय के अन्तिम शब्द देखिए :—

श्रीकृष्ण! श्री राधाकृष्ण! हे राम आते हैं मुख दिखलाओ।'

प्रश्न ५—भारतेन्दुजी की रचनाओं में अनुवाद की मौलिकता पर एक निबन्ध लिखिए।

उत्तर—यदि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' अर्थात् रस से भरा हुआ वाक्य ही कविता है, तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दुजी की अनुवादित रचनाओं में मौलिकता, स्वाभाविकता तथा सरसता आदि गुण कूट-कूट कर भरे हैं। अतः भारतेन्दुजी सफल कवि, सफल नाटककार तथा सफल लेखक ही नहीं थे वरन् उच्चकोटि के सफल अनुवादक भी थे। गम्भीरतया विचार किया जाये तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि अनुवाद करने का कार्य कविता करने से अधिक कठिन है। मौलिक गद्य अथवा पद्य में लेखक तथा कवि को पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वह अपनी पंक्तियों के कलेवर को बढ़ा भी सकता है तथा न्यून भी कर सकता है। उस पर किसी का नियंत्रण नहीं होता है। वह अपनी रूचि एवं इच्छानुसार अपनी रचनाओं में परिवर्तन भी कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह अपनी कल्पना के अनुसार अपनी मौलिक रचनाओं को विकसित करता चलता है। अपने पथ पर वह स्वच्छन्द मन से कलकल-निनादिनी सरिता की भाँति बढ़ता ही जाता है। इस प्रकार मौलिक लेखक अथवा कवि की लेखनी में प्रगति होती है। इसके विपरीत अनुवाद का कार्य अति दुरुह है। अन्य कवि के भावो को उसी प्रकार सीमित क्षेत्र मे सरस शैली में व्यक्त कर देना साधारण कवि का कार्य नही है। भारतेन्दु बाबू तो बहुमुखी प्रतिभा के कवि थे। उनकी अनूदित रचनाओं में मौलिकता तथा सरसता आदि गुण स्वाभाविक हैं। उनके अनूदित ग्रंथों में मौलिक ग्रंथों का सा आस्वादन मिलता है। अनुवाद की दुर्गन्धि तो कहीं नहीं मिलती है। भारतेन्दु की अनूदित रचनाएँ दो श्रेणियों में विभाजित हो सकती हैं—नाटक और काव्य। दोनों प्रकार की रचनाओं के अनुवाद में भारतेन्दुजी की अलौकिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उन्होंने प्राकृत, संस्कृत, बँगला तथा अँगरेजी आदि भाषाओं से नाटकों का अनुवाद किया। प्राकृत से कर्पूर मजरी, सस्कृत से मुद्राराक्षस, धनंजय विजय और रत्नावली; बँगला से विद्यासुन्दर, भारत-जननी, पाखण्ड विडम्बन और अँगरेजी से मरचैण्ट ऑफ वेनिस काअनुवाद 'दुर्लभ-बन्धु' नामक नाटक के नाम से किया है। काव्य में जयदेव जी

द्वारा रचित 'गीतगोविन्द' का अनुवाद 'गीत गोविंदानंद' नाम से किया है। इस प्रकार भारतेन्दुजी की अनूदित रचनाओं में जो सरसता है, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकती है। आपके अनुवादों में सगीत की गति है। साथ ही ब्रजभाषा के माधुर्य से विशेष सौंदर्य उत्पन्न होगया है।

भारतेन्दु जी ने महाकवि विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक का अनुवाद अत्यन्त ही सरस तथा स्वाभाविक ढङ्ग से किया है। अनुवाद्र की मौलिकता मत्रमुग्ध किए बिना नहीं रहती है। मगलाचरण के प्रथम श्लोक का रूपांतर देखिए :—

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि ? शशिकला; किंतु नामैतदस्या !
नामैवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतो : ?
नारीं पृच्छामि नेन्दुं, कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु–
र्देव्या निन्होतुमिच्छोरिति सुर सरित शाठ्यमव्यादिभोर्वः ॥

—मुद्राराक्षस (विशाखदत्त)

'कौन है सीस पै' ? 'चन्द्रकला' कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी ?
'हाँ यही नाम है भूल गई किमि जानत हू तुम प्रान पियारी'
'नारिहि पूछत चद्रहि नाहिं' कहै विजया जदि चंद्र लवारी।
यो गिरिजै छलि जग छिपावत ईस हरौ सब पीर तुम्हारी।

— मुद्राराक्षस (भारतेन्दु)

निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद मूल से भी अधिक सुन्दर है। साथ ही इसमें संगीत का पुट देकर एक विशेष माधुर्य उत्पन्न कर दिया है :—

प्रत्यग्रोन्मेष जिह्म क्षणमनभिमुखी रत्नदीप प्रभाणाम।
आत्मव्यापारगुर्वी जनितजललवा जम्भितैः साङ्कभङ्गैः ॥
नागाङ्कं मोक्तमिच्छोः शयनमुकुरुफणा चक्रवालोपधानं।
निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेर्दृष्टि राके करा वः ॥

—मुद्राराक्षस (भारतेन्दु)

'हरौ हरि नैन तुम्हारी बाधा।
सरद अन्त लखि सेसे-अक तें जगे जगत सुभ साधा ॥
कछु-कछु खुले, मुँदे कछु सोभित आलस भरि अनियारे।

असन कमल से मद के माते थिर भे जदपि दरारे ।।
सेस-सीस-मनि-चमक-चकौंधन तनिकहुँ नहिं सकुचाहीं ।
नींद भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमला उर माहीं ।।
हरौ हरि नेन तुम्हारी बाधा ।।'

—मुद्राराक्षस (भारतेन्दु)

काञ्चन कवि का 'धनंजय विजय' नाटक का अनुवाद अति सुन्दर तथा सरस है—

शोभन्ते विद्यया विप्राः क्षत्रिया विजयश्रिया ।
श्रियोऽनुकूलदानेन लज्जया कुलपालिकाः ।

धनंजयविजय (काञ्चन)

'द्विज सोहत विद्या पढ़ें', छत्री रन जय पाय ।
लक्ष्मी सोहत दान सों, तिमि कुल वधू लजाय ।।'

—धनजयविजय (भारतेन्दु)

और देखिए—

संग्राममरणं नाम क्षतदुःखं सुखोत्तरम् ।
आजन्म हृदये शलं मानभङ्गोहि मानिनाम् ।।
'बरु रन मैं मरनो भलो पाछे सब सुख सींव ।
निज अरि सों अपमान हिय खटकत जबलों जीव ।।'

यही नहीं किसी किसी श्लोक का रूपान्तर अत्यन्त ही सुन्दर तथा सरस है । देखिए :—

'हत्वा शान्तनुनन्दनस्य तुरगान्सूतं कुरूणां गुरोः
कर्णस्यापि रथं विदार्य कणशः कृत्वा विसंज्ञं कृपम ।
छित्त्वा द्रोणसुतस्य कार्मुकलतां विद्राव्य चान्यद्बलं
त्वत्पुत्रो भयविद्रवत्वत्कुरुपतेः पन्थान मन्वेत्ययम् ।।'

—धनंजय विजय (काञ्चन)

'गंगा सुत कै बधि तुरग, द्रोन सूत हति खेत ।
करन रथहि करि खंड बहु, कृप कहँ कियो अचेत ।।

ओर भजाई सैन सब, द्रोन सुवन-धनु काट ।
तव सुव जोहत अब खड़ो, दुरजोधन की बाट ।।'

धनंजय विजय (भारतेन्दु)

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु जी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से सभी नाटकों का रूपान्तर अत्यन्त ही सुन्दर किया है। 'पाखण्ड विडम्बन', 'कर्पूरमंजरी' आदि के अनवाद भी मौलिकता लिए हुए हैं। उनमें मूल रचनाओं की सी सरसता तथा सजीवता लक्षित होती है। कर्पूर-मंजरी का एक अनुवादित सरस सवैया देखिए :—

'गोरो सौ रग उमंग भरयौ चित, अंग अनंग को मंत्र जगाए।
काजर रेख खुभी दृग में दोउ, मोहन काम कमान चढ़ाए।।
आवनि बोलनि डोलनि ताकी, चढ़ी चित में अति चोप बढ़ाए।
सुन्दर रूप सो नैनन में वस्यो, भूलत नाहिं नै क्यों हुँ भुलाए।।'

उपर्युक्त सवैया में माधुर्य कूट-कूट कर भरा है। अनुप्रास की मधुर छटा ने सवैया की सरसता को द्विगुणित कर दिया है। जितनी बार इसे पढ़ें, उतना ही अधिक आनन्द आता है। भाषा मे प्रवाह है, मन्त्र-मुग्ध करने की अद्भुत शक्ति है।

अँगरेजी भाषा के 'मरचैंट ऑफ वैनिस' का अनुवाद भी बड़ा सुन्दर है। पात्रो के नामों का हिन्दी रूपान्तर तो अत्यन्त ही स्वाभाविक है। पोर्शिया का पुरश्री, जेसिका का यशोदा, ऐन्टोनियो का अनन्त आदि नाम भारतेन्दुजी की अलौकिक काव्य-प्रतिभा के द्योतक हैं।

कविवर जयदेव जी का 'गीत-गोविन्द' अपने माधुर्य, लालित्य आदि के कारण संस्कृत साहित्य की एक अनुपम कृति तथा अक्षयनिधि है। उसका अनुवाद भी भारतेन्दु जी ने अत्यन्त ही सरस तथा मनमोहक शैली में किया है। देखिए—

'मेघैर्मेदुरमंबरंवनुभुवः श्यामास्तमालद्रुमैः।
नक्तं भीरुरयं त्वमेवततिमंराधेग्रहम प्रापय।।
इत्थनंदनिदेशश्चलितयोः प्रत्यध्व कुंजद्रुमं।
राधा-माधव योर्जयंति यमुना कूलेरहः केलयः।।'

गीत गोविन्द (जयदेव)

मेघन सों नभ छाइ रहे बन-भूमि तमालन सों भई कारी।
साँझ भई डरिहै घर याहि दया करिकै पहुँचाबहु प्यारी॥
यो सुनि नन्द निदेस चले दोउ कुंजन में हरि भावु दुलारी।
सोई कलिन्दी के कूल इकन्त की केलि हरै भव प्रीति हमारी॥'

स्वीकार करना पड़ेगा कि उपर्युक्त सवैया में मौलिकता कूट-कूट कर भरी है तथा अनुवाद की गंध भी नहीं आती है।

सक्षेप में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की अनुवाद-शैली अत्यन्त सरस है। उसमें माधुय के अनुपम गुण के समावेश से पाठक के हृदय को मन्त्रमुग्ध करने की अनुपम शक्ति है। अनुप्रासों के सुन्दर तथा स्वाभाविक प्रयोग और चलते मुहावरों से भाषा का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है। सुन्दर शब्द-चयन तथा सगीत की गति पाठक के मस्तिष्क पर एक ऐसा मनमोहक प्रभाव डालती है कि वह आनन्द मे विभोर हो झूमने लगता है। ब्रजभाषा के स्वाभाविक माधुर्य तथा अतुलनीय प्रवाह से हृदय अनयन्त्रित भाव से आकर्षित हो जाता है। उपर्युक्त अलौकिक गुणों के कारण भारतेन्दुजी की अनूदित रचनाओं में मौलिकता का समावेश स्वभावतः ही हो गया है। अतः भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी की अनुवाद-शैली एक उच्चकोटि के कवि तथा सफल अनुवादक की शैली है।

प्रश्न ६—'भारतेन्दु के काव्य में हास्य और व्यंग्य' विषय पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर--जर्मन आलोचक वफन का कथन 'Style is the man himself' अर्थात् शैली स्वयं लेखक का व्यक्त स्वरूप है, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के विषय में पूर्णरूपेण चरितार्थ होता है। वह अत्यन्त परिहास प्रिय तथा विनोदी थे। वह बाल्यकाल में मकानों की दीवालों पर फौस्फोरस से भयानक चित्र बना देते थे। यही नहीं युवावस्था में भी किसी से परिहास करने में न चूकते थे। होली तथा पहली अप्रैल के दिन कई बार भारतेन्दु जी ने लोगों को मूर्ख बनाया। एक बार आपने सूचना निकाली कि एक मेम खड़ाऊं पहनकर, रामनगर के सामने गंगा पार करेगी। सूचना पाते ही निश्चित समय पर आकर भीड़ घाट पर एकत्रित हो गई। विलम्ब तक

प्रतीक्षा करने के पश्चात् लोगों को ज्ञान हुआ कि 'आज एप्रिल फूल्स डे' है। इसी प्रकार एक बार हरिश्चन्द्र ने स्कूल में एक प्रसिद्ध गायक के गाना होने की सूचना निकाली। सहस्रो व्यक्ति विद्यालय में एकत्र हो गये। जब पर्दा उठा तो एक मसखरा एक लम्बी टोपी लगाये तथा उल्टा तानपूरा पकड़े दिखाई दिया। लोग अपनी मूर्खता पर हंसते हुए चले गये। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु जो स्वभाव से ही परिहास-प्रिय थे। यही कारण है कि भारतेन्दु जी की रचनाओ में हमें हास्य और व्यंग की पूर्ण झाँकी होती है।

हिन्दी आचार्यों के कथनानुसार हिन्दी लेखकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने ही सर्वप्रथम गद्य की भाषा में हास्य और व्यंग्य का पुट दिया। फलतः हिन्दी भाषा-साहित्य में रोचकता उत्पन्न हुई। गंभीर भाषा साहित्य के विकास के लिए मनोरजक साहित्य का निर्माण आवश्यक भी था। इस आवश्यकता की पूर्ति भारतेन्दु जी द्वारा ही की गयी। भारतेन्दु जी युग-नेता थे। वह जानते थे कि साहित्य की उपादेयता जनता की सेवा है। इसी दृष्टिकोण को लेकर वह साहित्य में अवतरित हुए थे। उनकी सभी रचनाओं में यह विशेषता पूर्ण रूप से लक्षित होती है। देशहितैषिता के समन्वय से भारतेन्दु जी की रचनाओं में विशेष सौंदर्य आ गया है। उनकी सभी प्रकार की रचनाओ में व्यंग्य और हास्य प्रचुर मात्रा में है। भारतेन्दु जी शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे। राजा शिवप्रसादजी उर्दू की ओर झुके थे। अतः राजा जी का परिहास करने के लिए तथा उर्दू को नीचा दिखाने के लिए भारतेन्दु जी ने उर्दू का स्यापा लिखा। भूमिका देखिए—

"अलीगढ़ इन्स्टिट्यूट गजट और बनारस अखबार के देखने से ज्ञात हुआ कि बीबी उर्दू मारी गयी और परम अहिंसानिष्ठ होकर भी राजा शिवप्रसाद ने यह हिसा की—हाय हाय! बड़ा अंधेर हुआ, मानों बीबी उर्दू अपने पति के साथ सती हो गयीं।"

स्यापा की कविता देखिअ—

'है है उर्दू हाय हाय। कहाँ सिधारी हाय हाय॥
मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्ला हाय हाय॥

बल्ला विल्ला हाय हाय। रोये पीटें हाय हाय॥
किसने मारी हाय हाय। खबर-नवीसी हाय हाय॥
चरव जुबानी हाय हाय। शोख बयानी हायहाय॥
फिर नहिं आनी हाय हाय।' आदि—

उर्दू में 'इन्दर सभा' नामक एक नाटक है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने उसी नाटक के अनुकरण पर एक प्रहसन की रचना की जिसका नायक बन्दर और नायिका शुतुरमुर्ग परी है। इस प्रहसन का नाम उन्होंने बन्दर-सभा रक्खा। निम्नलिखित पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जायगा कि उनके इस नाटक में विनोद कैसा कूट-कूट कर भरा है। देखिए—

[आना राजा व बंदर का बीच सभा के]
'सभा में दोस्तो बंदर की आमद आमद है।
गधे और फूलों के अफसर की आमद आमद है॥
मरे जो घोड़े तो गदहा पे बादशाह बना।
उसी मसीह के पैकर की आमद आमद है॥'
[गजल जवानी शुतुरमुर्ग परी हसब हाल अपने के]
'गाती हूँ मैं औ नाच सदा काम है मेरा।
ए लोगो शुतुरमुर्ग परी नाम है मेरा॥
फन्दे से मेरे कोई निकलने नहीं पाता।
इस गुलशने आलम में बिछा दाम है मेरा॥
ज़र मज़हबो मिल्लत मेरा बंदी हूँ मैं ज़र की
ज़र ही मेरा अल्लाह है ज़र राम है मेरा॥'

उपर्युक्त उद्धरणों से यह प्रमाणित होता है, भारतेन्दु जी अन्य रसों के साथ-साथ हास्य रस को भी विशेष महत्व देते थे। उनके द्वारा प्रकाशित हरिश्चन्द्र मैगज़ीन में भी पुरातत्व सामग्री का भी उतना ही मूल्य था जितना हास्य तथा विनोद से भरे लेखों का। मैगज़ीन के आवरण पृष्ठ पर छपे विवरण को देखिए—

'A monthly journal published in connection with the Kavivachansudha Containing articles on literary,

scientific, political and religious subjects antiquities, reviews, dramas, history, novels, poetical selections, gossip, humour and wit.'

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी सच्चे देश-भक्त थे। स्पष्ट आलोचना करने पर उनके ऊपर प्रेस एक्ट के अनुसार अभियोग चलाये जा सकते थे। इसी-लिए जनता की पुकार ऊपर तक पहुँचाने के लिए उन्होंने व्यंग्य और हास्य का सहारा लिया। अँगरेजी राज, पुलिस, कानून आदि पर जहाँ कहीं भी अवसार प्राप्त हुआ भारतेन्दु जी व्यंग्य-बाण छोड़े बिना नहीं रहे हैं। 'अंधेर-नगरी' नाटक में अत्यन्त साधारण रूपक जैसे चूरन और चटनी आदि लेकर ऐसे व्यंग्य-बाणों की वर्षा की है कि पाठक भारतेन्दु जी के कौशल से मंत्र-मुग्ध हुए बिना नहीं रहता है। देखिए—

'चने जोर गरम-टके सेर।
चना चुरमुर चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुँह खोलै।
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता।
चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते॥'

यही नहीं 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक में मदिरा पान पर लिखे दोहे, व्यंग्य और हास्य से परिपूर्ण हैं। उनमें यदि एक ओर हास्यरस का पुट है तो दूसरी ओर मदिरा पीने वालों पर व्यंग्य के छींटे कसे हैं। देखिए—

'वैष्णव लोग कहावहीं, कण्ठी मुद्रा धारि।
छिप-छिप कै मदिरा पियहिं, यह जिय माँझ विचारि।
होटल में मदिरा पियैं, चोट लगे नहिं लाज।
लोट लए ठाड़े रहत, टोटल दैवे काज।
राजा राजकुमार मिलि, बाबू लीने संग।
वार बधुन लै बाग में पीअत भरे उमंग।
ब्राह्मण सब छिपि-छिपि पियत, जामें जानि न जाय।
पोथी के चोंगान भरि बोतल बगल छिपाय।'

उपर्युक्त दोहों में कण्ठी माला धारण करने वाले सेठ, राजकुमार, बाबू तथा ब्राह्मणों पर व्यंग्य-बाण छोड़े गए हैं। मदिरा प्रेमियों की मदिरा पीकर बड़ी दुर्दशा हो जाती है। वे पीते ही चले जाते हैं। पुरोहित का मदिरा पिये हुए चित्रण देखिए—

'जोर किया जोर किया जोर किया रे।
आज तो मैंने नशा जोर किया रे।
साँझहि से हम पीने बैठे, पीते-पीते भोर किया रे।'

ऊपर के गीत में मदिरा पीकर गाते हुए व्यक्ति को विकृत आकार, पागलों की सी वाणी और पागलपन की चेष्टा करते हुए देखकर हँसी आना स्वाभाविक है। दूसरा उदाहरण लीजिए—

गेंदा फूले जैसे पकौरी। लड्डू से फले फल बौरि बौरि।
खेतन में फूले भात दाल। घर में हम फूले कुल के पाल।
आयौ आयौ बसंत आयौ आयौ बसंत।

हास्य रस के छः भेद होते हैं—स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसित। ऊपर के गीतों में हास्य रस की सभी दशाएं पूर्ण रूप से देखने को मिलती हैं।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। कविता तथा समाज का कोई अङ्ग ऐसा नहीं रहा जो उन्होंने स्पर्श न किया हो। जहाँ कहीं उनको किसी प्रकार का अभाव खटका, वहीं उन्होने अपनी लेखनी द्वारा उस अभाव की पूर्ति की। उनकी दृष्टि सर्वत्र समान रूप से पड़ी। इनके विषय में 'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि' वाली उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। स्पष्टवादी होने के कारण भारतेन्दु जी की दृष्टि गुण और दोषों पर समान रूप से पड़ी। उदाहरण के लिए जिस काशी के घाटो की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए भारतेन्दु जी नहीं थके—

'कहूँ बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन जोहत मोहत।।'

उसी काशी का चित्र भारतेन्दु जी ने व्यंग्य के साथ कैसी अलौकिकता के साथ खींचा है—

'देखी तुमरी कासी—लोगो, देखी तुमरी कासी।'
मैली गली भरी कतवारन सड़ी चमारिन पासी।
नीचे नल से बदबू उबलै मनो नरक चौरासी॥'
'अमीर सब झूठे औ निंदक करें घात विश्वासी।
सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोलैं बात अकासी॥'
'घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी।
दाल की मंडी रंडी पूजें माना इनकी मासी॥'

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु सच्चे साहित्य सेवी, सच्चे समाज सेवी और सच्चे राष्ट्र सेवी थे। स्वाभिमानी, स्पष्टवादी तथा स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति होने के कारण वह सदैव निर्भीक रहते थे। उन्होंने कोई भी ऐसा दोषी अङ्ग नहीं छोड़ा जिसकी ओर उन्होंने अपने व्यंग्य-बाण न बरसाये हों। ऐसा करना उनका स्वाभाविक था, क्योंकि उनके दृष्टिकोण से साहित्य का उद्देश्य ही जन-सेवा थी। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी सुधारवादी भी थे। सुधारवाद तथा राष्ट्र प्रेम की समन्वित भावनाओं ने कवि के हृदय में क्रांति उत्पन्न की थी। शोषित तथा पीड़ित मानव को देखकर वह तिलमिला उठते थे। यही कारण है कि उनके साहित्य में प्रगतिवाद की झलक दिखाई देती है।

भारतेन्दु जी के नाटकों मे व्यंग्य का पुट भी पर्याप्त मात्रा में है। 'धनंजय विजय' में दुर्योधन और अर्जुन के वार्तालाप में व्यंग्य देखिए—

दुर्योधन—

'बहु दुख सहि वनवास करि जीवन सों अकुलाय।
करन हेतु आयौ इतै, इकलो गरब बढ़ाय॥'

अर्जुन—

'इकले ही बल कृष्ण लखत भगिनी हरि छीनी।
अरजुन की रन नाहि नई इकली गति लीनी॥'

दुर्योधन—

'चूड़ी पहिरन सों गयो, तेरो सर अभ्यास।
नर्तनशाला जाव किन, इत पौरुष परकास॥'

दोनों योद्धा एक दूसरे पर व्यंग्य वाणों की वर्षा कर रहे हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतेन्दु जी ने अपनी रचनाओं में बड़े तीखे और मार्मिक व्यंग्य कसे हैं। राजा शिवप्रसाद जी पर कसा हुआ एक व्यंग्य देखिए—

यमराज—प्रतिष्ठा कैसी, धर्म और प्रतिष्ठा से क्या सम्बन्ध ?

चित्रगुप्त—महाराज, सरकार अंग्रेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उनको स्टार-आफ इण्डिया (सितारे हिन्द) की पदवी मिलती है।

[वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति—चतुर्थ अङ्क]

स्पष्ट है कि भारतेन्द जी को लोगों के कटु वचन अत्यधिक व्यथित करते थे। इसीलिए वह लोगों पर व्यंग्य वाण छोड़ने में भी नहीं चूकते थे। भरत वाक्यों में उनकी आंतरिक कामना देखिए—

'खल के विष बैनन सों मत सज्जन दुख पावें।'

'खल गगन सों सज्जन दुखी मत होइ, हरि-पद रति रहैं।'

व्यंग्य और हास्य दोनों आत्मा और शरीर की भाँति एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। अब भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की रचनाओं में आये हास्य का पुट देखिए—

विदूषक--'बकबक किए ही जायगी तो तेरा दाहिना और बाँया युधिष्ठिर का बड़ा भाई (कर्ण=कान) उखाड़ लेंगे।'

विचक्षण—और तुम भी जो टें-टें किये ही जाओगे तो तुम्हारी भी स्वर्ग काट के एक ओर के पोंछ की अनुप्रास मूड़ देंगे और लिखने की सामग्री मुंह में पोत कर पान के मसाले का टीका लगा देंगे।

स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दु जी ने नाटकीय आख्यान के बीच हास्य एवं मनोरंजक प्रसंगों की अवतारणा कर अपनी काव्य-प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है। भाषा घटनाओं के भार से मुक्त होती हुई प्रतीत होती है।

विचक्षण—तुम्हारे काव्य की उपमा तो ठीक ऐसी है जैसे लंवस्तनी के गले में मोती की माला, बड़े पेट वाली को कामदार कुर्ती, सिर मुंडी को

फूलों की चोटी और कानी को काजल।

विदूषक—सच है और तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे सफेद फर्श पर गोबर को छोथ, सोने की सिकड़ी में लोहे की घण्टी और दरियाई की अँगिया में मूंज की बखिया।

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक यद्यपि करुणा रस प्रधान नाटक है; फिर भी भारतेन्दु जी ने हास्य रस का पुट देकर अपनी प्रतिभा को भूरि-भूरि चमकाया है। पिशाच और डाकिनियों का नृत्य देखिए—

पिशाच—हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ ड़क कड़ हड्डी को तोड़ेंगे।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे॥

डाकिनी—हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलाएँगी।
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजायेंगी॥

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र सच्चे कलाकार थे। उन्होंने साहित्य के जिस अङ्ग को स्पर्श किया, उसे कंचन बना दिया। 'नीलदेवी' नाटक में पागल के मुख से निकले शब्द देखो--

'हमारा देश—हम राजा, हम रानी! हम मंत्री! हम प्रजा, और कौन? मार मार मार तलवार तलवार। टूट गई टूटी। टूटी से मार। ढेले से मार। हाथ से मार। मुक्का, जूता, लात, लाठी, सोटा, ईंट, पत्थर, पानी, सबसे मार? हम राजा, हमारा देश, हमारा मेष, हमारा पेड़-पत्ता, कपड़ा-लत्ता, छाता, जूता सब हमारा। ले चला, ले चला। मार मार मार—जाय न, जाय न—सूरज में जाय, चन्द्रमा में जाय, जहाँ में जाय, तारा में जाय, उतारा में जाय, पारा में जाय, जहाँ जाय वहीं पकड़—मार मार।'

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु जी युग-नेता थे। वह खरी से खरी, तीखी से तीखी बातें सुनाकर लोगों को उचित मार्ग पर लाना चाहते थे। अपने मनोरथ को पूर्ण करने के लिए उन्होंने व्यंग्य और हास्य का आश्रय लिया। 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'लेवी प्राण लेवी', 'पाँचवे पैगम्बर', 'कंकड़ स्तोत्र', 'अंग्रेज स्तोत्र' आदि में व्यंग्य और हास्य की छटा अवलोकनीय है। इसके अतिरिक्त 'बंदर सभा', 'उर्दू का स्यापा' आदि में उच्च कोटि की कला तथा व्यंग्य दोनों मिलते हैं। राजा शिवप्रसाद उर्दू

के पक्षपाती थे। उनका कहना था कि बिना उर्दू के भाषा में सजीवता तथा आकर्षण नहीं आ सकते। दूसरी ओर राजा लक्ष्मणसिंह संस्कृत गर्भित हिंदी के पक्षपाती थे। भारतेन्दु जी ने बीच का मार्ग ग्रहण किया। इसीलिए उन्हें भाषा को अधिक आकर्षक तथा सजीव बनाने के लिए व्यंग्य और हास्य का प्रयोग करना पड़ा। उनके काव्य में हास्य और व्यंग्य के प्रयोग से सजीवता तथा मधुरता का समावेश हुआ है। इनके प्रभाव से ही भारतेन्दु युग के सभी लेखकों में व्यंग्य और हास्य की रचनाएं प्रचुर मात्रा में हैं।

प्रश्न ७—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के निबन्ध-साहित्य का विश्लेषण करते हुए, उनकी निबंध-लेखन-सफलता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। साहित्य का ऐसा कोई अङ्ग न था जिसे उन्होंने स्पर्श न किया हो और जो कुछ भी स्पर्श किया उसमें ऐसा कुछ न था जो कंचन न बना हो। उन्होने नाटक, उपन्यास, काव्य एवं अन्य शुद्ध साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त इतिहास, जीवन चरित्र, पुरावृत, समाज, धर्म, राजनीति आदि विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ भी कीं। अनेक विषयो पर लेख भी लिखे जिन्हें हम 'निबंध' की संज्ञा दे सकते हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द से पूर्व हिंदी साहित्य में निबंधों का जन्म भी नहीं हुआ था। इसलिए यदि हम उन्हें हिंदी निबंधों का जन्मदाता कहें तो अत्युक्ति न होगी।

भारतेन्दु जी के पिताजी एक धन-सम्पन्न साहित्यिक तथा समाज सेवी व्यक्ति थे। अतः बाल्यावस्था से ही भारतेन्दु जी की रुचि समाज सुधार, देश सुधार, साहित्योन्नति तथा धर्म सुधार की ओर हो गयी थी। स्वाध्याय से उनकी विलक्षण प्रतिभा का विकास भी पूर्ण रूप से हो गया था। यही कारण है कि उनके निबंधों में भावों की विदग्धता, मार्मिकता, बहुज्ञता, प्रगतिशीलता आदि का पूर्ण परिचय मिलता है। जिस प्रकार भारतेन्दु जी के नाटकों और कविताओं में धार्मिक, राजनैतिक तथा सामयिक विचारो का प्राधान्य है उसी प्रकार उनके लेखों में भी उनकी विचारधारा पूर्ण रूप से अंकित हुई है। अतः हम उनके निबधों को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित कर सकते हैं।

१—राजनैतिक निबन्ध।

२—धार्मिक निबन्ध ।

३—सामयिक एवं सामाजिक निबन्ध ।

४—विचारात्मक निबन्ध ।

५—कथात्मक निबंध ।

६—साहित्यिक निबंध ।

भारतेन्दु बाबू सच्चे देश प्रेमी थे । उनकी वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति ही था । जिस देश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा, भारत जननी आदि नाटकों का प्रणयन किया था, उसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने कुछ राजनैतिक निबंध भी लिखे । उनके राजनैतिक निबंधों में 'भारतवर्ष के सुधार का क्या उपाय है ?' 'इङ्गलैंड और भारतवर्ष', 'दिल्लीं दरबार दर्पण' आदि उल्लेखनीय हैं । इन निबंधों में हम भारतेन्दुजी को एक राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित, समीक्षक तथा व्यंगकार के रूप में देखते हैं । 'दिल्ली दरबार दर्पण' निबंध में राजाओं का व्यंग्य-चित्र देखिए :—

'कोई दूर से हाथ जोड़े आये और दो एक ऐसे थे जब एडिकौंग के बदन झुकाकर इशारा करने पर भी उन्होंने सलाम नहीं किया तो एडिकौंग ने पीठ पकड़कर उन्हें धीरे से झुका दिया । कोई बैठकर उठना जानते ही न थे यहाँ तक कि एडिकांग को 'उठो' कहना पड़ता था । कोई झण्डा, तमगा, सलामी और खिताब पाने पर भी एक शब्द धन्यवाद का नहीं बोल सके और कोई इनमें से दो हीं एक पदार्थ पाकर ऐसे प्रसन्न हुए कि श्रीयुत वायसराय पर अपनी जान और माल निछावर करने को तैयार थे ।.....श्रीयुत वायसराय लोगों से इतनी मनोहर रीति से बातचीत करते थे । जिससे सब मगन हो जाते थे और ऐसा समझते थे कि वायसराय ने हमारा सबसे बढ़कर आदर किया । भेंट होने के समय श्रीयुत ने हरेक से कहा कि आपसे दोस्ती करके हम अत्यन्त प्रसन्न हुए और तमगा पहिनाने के समय भी बड़े स्नेह से उनकी पीठ पर हाथ रखकर बात की ।'

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चंदजी के राजनैतिक निबंधों में व्यंग्य का पुट अधिक है । उसमें एक ओर राजनीति की स्पष्ट तथा

खरी आलोचना की है जिससे हमें उनके युग नेतृत्व का पूर्ण परिचय मिलता है, तो दूसरी ओर भाषा की सजीवता है जो हमें मंत्र-मुग्ध किये बिना नहीं रहती है। साथ ही स्वाभाविकता तथा यथार्थता के समावेश से विचार अधिक बोधगम्य हो गए हैं।

धार्मिक क्षेत्र में बाबू जी बल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। लगभग एक सहस्र पदों में उन्होंने अपनी भक्ति-भावना को पूर्ण रूप से व्यक्त किया है। हृदय के अन्तकरण से निसृत ये पद उनके भक्त-हृदय के प्रतीक हैं। उनकी यही वैष्णव धर्म की अनन्यता, उनके धार्मिक लेखों में पूर्णरूप से दिखाई देती है। उनके धार्मिक निबंधों में 'ईश्वर का वर्तमान होना', 'भक्ति ज्ञानादि से क्यों बड़ी है,' 'हम मूर्ति पूजक हैं', 'श्रुति रहस्य', 'ईसू खीष्ट और ईश कृष्ण', 'भगवत स्तुति' 'वैष्णव सर्वस्व चरितावली,' 'वैष्णवता और भारतवर्ष' आदि उल्लेखनीय हैं। उनके ऐसे निबन्धों में धार्मिक आवेश अधिक है। फिर भी उनकी शैली भाव के पीछे चलती है। इसके अतिरिक्त उनके निबंधों से उनकी शोधकवृत्ति का भी परिचय मिलता है। 'ईसू खीष्ट और ईश कृष्ण' से उद्धरण देखिए :—

'अपेल्लो को लीजिए। वह हिन्दुओं के श्रीकृष्ण का चित्र है। इसका सूर्य में निवास है और यहाँ भी नारायण का सूर्य में निवास है। इस नाम के चार देवता थे और यहाँ भी श्रीकृष्ण के चार व्यूह हैं। उसने थाइनन नामक सर्प को मारा और यहाँ भी कालीय-दमन हुआ। वहाँ यह शिल्प औषधदान और रस का देवता है और यहाँ भी। उसका ध्यान सुन्दर युवा, लम्बे केश और हाथ में कभी धनुष और कभी वंशी लिए है और यहाँ भी। वह पर्वत पर नव मित्रों के साथ विहार करता था, यहाँ गिरिराज पर गोपियों के साथ विहार है।'

अतः स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दु जी के लेखों में निरीक्षण, अध्ययन और भावुक वृत्ति आदि पूर्णरूप से दिखाई देती हैं। ऐसे लोगों में भारतेन्दु जी ने तत्सम शब्दों को अपनाने का प्रयत्न किया है। फिर भी तत्समता के साथ-साथ उन्होंने साधारण शब्दों को भी उचित स्थान दिया है।

भारतेन्दु जी के सामयिक और सामाजिक निबंधों में 'स्वर्ग में विचार

सभा', 'सबै जाति गोपाल की', 'बसंत पूजा', 'खंड भंड संवाद', 'वैश्या स्तोत्र', 'अँगरेज स्तोत्र', 'कङ्कड़ स्तोत्र', 'पाँचवे पैगम्बर', 'बाबू हरिश्चंद का झूठा अपवाद' आदि निबन्ध अति उल्लेखनीय है। भारतेन्दुजी विनोद प्रकृति के व्यक्ति थे। अतः हास्य और व्यंग्य उनके सभी निबन्धों में एक समन्वित गुण है किन्तु इन लेखों में हास्य के साथ-साथ समाज-कल्याण की भावना भी निहित है। 'एक अपूर्व स्वप्न', 'काश्मीर कुसुम', 'सूर्योदय', 'अङ्कमय जगत', 'होली', 'भूकम्प' आदि निबन्ध सामयिक घटनाओं से सम्बन्धित निबन्ध ही कहे जाएँगे। ऐसे निबन्धों में भाषा की सजीवता देखने योग्य है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में प्रवाह उत्पन्न हो गया है। 'अपूर्व स्वप्न' की भाषा देखिए :—

'बनाने की देर न होगी कि कीट (क्रिटिक) काट कर आधी से अधिक निगल जाएँगे। यश के स्थान शुद्ध अपयश प्राप्त होगा। जब देखा कि अब टूटे फूटे विचार से काम न चलेगा तब लाड़िली नींद को दो रात पड़ोसियों के घर भेज आँख बन्द कर शम्भु की सी समाधि लगा गया। यहाँ तक कि इक्यावन वर्ष उसी ध्यान में बीत गये.....पण्डित बुलवाये जिनकी संख्या पौन दशमलव से अधिक नहीं है।'

विचारात्मक निबन्धों में 'मित्रता', 'अपव्यय', और 'खुशी' अति उल्लेखनीय हैं। ऐसे निबंधों में वाक्य छोटे-छोटे हैं। कहीं-कहीं भारतेन्दु जी ने उर्दू के प्रचलित तद्भव शब्दों का भी प्रयोग किया है। बदरीनारायण चौधरी के कथनानुसार भारतेन्दु जी में कुछ उतावलापन था। वे सदा कार्य में व्यस्त रहते थे। यही कारण है कि कहीं-कहीं भारतेन्दु जी के निबन्धों में शीघ्रता तथा कुछ गड़बड़ दिखाई देती है। उनके 'खुशी' निबन्ध का उद्धरण देखिए :—

"हस्वदिल ख्वाह अमूदगी को खुशी कह सकते हैं, यानी जो हमारे दिल की ख्वाहिश हो वह कोशिश करने से या इत्तफाकिया वगैर कोशिश किए आवे तो हमको खुशी हासिल होती है।

× × ×

इसी से हम कह सकते हैं कि खुशी से मरतब=से कुछ वास्ता नहीं, खुशी एक नेअमते उज्मा है जिसे हर शख्स नहीं पाता।"

भारतेन्दु जी ने 'खुशी' निबन्ध लिखकर राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद जी की हिन्दी का आदर्श उपस्थित किया है। ऐसी भाषा लिखकर उर्दू मिश्रित हिन्दी के हिमायतियों को वह यह दिखाना चाहते थे कि क्या ऐसी शैली कभी हिन्दी कहलायी जा सकती है ? इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु जी उर्दू के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। उर्दू में वह 'रासो' नाम से कविता भी किया करते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु जी के विचारात्मक निबंधों में भावुकता का पुट अधिक है। विचारों के संयोग से ऐसे निबंधो में सजीवता उत्पन्न हो गयी है।

कथात्मक निबन्धों में 'सरयूपार की यात्रा' तथा 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती' अधिक सुन्दर हैं। इनमें वर्णनात्मक शैली अत्यन्त ही आकर्षक है। कुछ निबंध यात्रा में लिये गये नोटों का विस्तृत रूप हैं। देखिए :—

'यहाँ के बाजार का हम बनारस के किसी भी बाजार से मुकाबिला नहीं कर सकते। महज़ बे हैसियत। महाजन एक यहाँ हैं, वह टूटे खपड़े में बैठे थे। तारीफ यह सुनी कि सालभर में दो बेर कैद होते हैं क्योंकि महाजन को जाल करना फर्ज है और उसको भी छिपाने का शऊर नहीं।'

भावात्मक स्थलों पर भारतेन्दु जी ने तत्समतापूर्ण प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग किया है। देखिए :—

"हा ! यह वही अयोध्या है जो भारतवर्ष में सबसे पहिले राजधानी बनाई गई। इसी में महात्मा इक्ष्वाकु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, अज, रघु, श्री रामचन्द्र हुए हैं और इसी के राजवंश के चरित्र में बड़े-बड़े कवियों ने अपनी बुद्धि-शक्ति की परिचालना की है।"

तदनन्तर भारतेन्दु जी के साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबन्ध आते हैं। 'कबीर', 'जयदेव', 'सूरदास', 'बङ्ग भाषा की कविता' 'सङ्गीतसार', इनमें अति उल्लेखनीय हैं। 'हिन्दी-भाषा' नामक छोटी-सी पुस्तक तथा नाट्य-शास्त्र पर लिखी गयी 'नाटक' पुस्तक आलोचनात्मक साहित्यिक निबंध (Thesis) ही गिने जाएँगे। 'नाटक' शीर्षक लेख की शैली तो भारतेन्दुजी की शैली से नितान्त भिन्न है। इसमें संस्कृत की क्लिष्टता अधिक है। विद्वानों की धारणा है कि यह लेख भारतेन्दुजी ने न लिखकर बनारस के किसी

संस्कृत पण्डित ने लिखा होगा। कारण इसका केवल यही है कि भारतेन्दुजी ने ऐसी शैली का कहीं अन्यत्र प्रयोग नहीं किया है। फिर भारतेन्दु जी के साहित्यिक निबन्ध में कहीं-कहीं काव्यानन्द उच्चकोटि का है। देखिए—

"जहाँ गीत गोविंद है, वहीं वैष्णव गोष्ठी है, वहीं रसिक-समाज है, वहीं वृन्दावन है, वहीं प्रेम सरोवर है, वहीं भाव समुद्र है, वहीं गो-लोक है और वहीं प्रत्यक्ष ब्रह्मानंद है।"

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य में निबंध साहित्य के जन्मदाता थे। उन्होंने वैसे तो सभी प्रकार के निबंधों पर लेखनी चलाई किंतु भावात्मक और विचारात्मक समन्वित लेख लिखकर हिंदी साहित्य में एक नवीन पथ का प्रदर्शन किया। साधारण रूप से उनकी निबंधों की शैली दो प्रकार की मानी जा सकती है। प्रथम विवेचनात्मक शैली जिसमें उन्होंने गम्भीर विषय का विवेचन, तर्क-वितर्क के साथ अत्यन्त ही वैज्ञानिक ढंग से किया है। उनके पुरातत्व एवं इतिहास सम्बन्धी लेखों में हमें इसी शैली की झाँकी होती है। द्वितीय प्रकार की शैली भावावेश पूर्ण है। इसकी भाषा विवेचनात्मक शैली की अपेक्षा अधिक सरल है। दोनों प्रकार की शैलियों के अतिरिक्त भारतेन्दु जी की एक अन्य शैली है जिसे हमें व्यंग्यात्मक एवं हास-परिहास-पूर्ण शैली कह सकते हैं। ऐसी शैली में कवित्व एवं अलंकारों की छटा दर्शनीय है। इस शैली का उनकी प्रथम दोनों शैलियों पर पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने अपने निबंधों में हिन्दी का जातीय एवं शिष्ट रूप ही ग्रहण किया। यद्यपि उनकी भाषा में अवधी तथा ब्रजभाषा के प्रयोग और व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ हैं, फिर भी उनके निबन्ध हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उन्होंने अपने प्रयत्न एवं प्रेरणा से हिन्दी में अनेक लेखकों को जन्म दिया। राधाचरण गोस्वामी, मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या, लाला श्रीनिवासदास, ठाकुर जगमोहनसिंह, महादेव दुबे, हरमुकुन्द, पण्डित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पण्डित गणेशदत्त शर्मा, पण्डित भीमसेन जी, काशीनाथ खत्री आदि उच्चकोटि के लेखक भारतेन्दु जी के प्रोत्साहन से ही मातृभाषा हिन्दी के सच्चे सेवक सिद्ध

हुए। अतः इस दृष्टि से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी के सबसे प्रमुख उन्नायक कहे जाएँगे।

प्रश्न ८—भारतेन्दु जी का समाचार पत्र साहित्य' का इतिहास संक्षिप्त रूप में लिखिए।

उत्तर—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र युग नेता थे। वह जनता तक अपना सन्देश पहुँचाना चाहते थे। उनकी आंतरिक अभिलाषा थी कि भारत पश्चिमी देशों की भाँति उन्नति करे, प्रगति के पथ पर अग्रसर हो। वह जानते थे कि जनता तक संदेश पहुँचाने के लिए सर्वोत्तम साधन पत्र-प्रकाशन ही हैं। पत्र-पत्रिकाएँ ही स्थायी प्रभाव डाल सकती हैं। इसीलिए उन्होंने केवल १८ वर्ष की आयु सन् १६८७ ई० में पत्र-प्रकाशन का बीड़ा उठा लिया 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली उक्ति के अनुसार भारतेन्दु जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिए इतनी अल्पायु में इतने बड़े एवं महत्त्वपूर्ण कार्य का बीड़ा उठा लेना कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं। जिसने ५ वर्ष की आयु में 'लै ब्योंड़ा ठाड़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान' वाला दोहा रचकर पिता को चकित कर दिया, वह १७ वर्ष की आयु में पत्र सम्पादन भी कर सकता है। सर्व प्रथम उन्होंने सन् १८६७ ई० (संवत् १६२४ भाद्रपद) में 'कवि वचन सुधा' का मासिक-पत्र के रूप में प्रकाशन किया। यद्यपि उस समय 'ज्ञान प्रदीप' तथा 'वृत्तांत विलास' आदि अन्य पत्र भी प्रकाशित होते थे किन्तु 'कवि वचन सुधा' की समता में कोई नहीं बैठ सकता था। इसमें पहले प्राचीन कवियों की कविताएँ छपती थीं। तदनन्तर जब यह पत्र पाक्षिक एवं साप्ताहिक रूप में छपने लगा, तो गद्य तथा राजनैतिक एवं सामाजिक निबंध आदि भी छपने लगे। कभी-कभी भारतेन्दुजी की कविताएँ एवं समस्याएँ भी प्रकाशित होती थीं। साप्ताहिक रूप में आकर पत्र का आकार भी बढ़ गया था। आवरण पृष्ठ पर इस पत्र का सिद्धांत वाक्य भी छपता था—

'खल जनन सों सज्जन दुखी,
मति होहिं हरि-पद मति रहैं।
उपधर्म छूटै सत्व निज,
भारत गहै कर दुख बहैं॥

बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम
होहिं जग आनँद लहैं।
तजि ग्राम कवित सुकविजन की
अमृत बानी सब कहैं॥'

उपर्युक्त पद्यांश में इस पत्र के सभी सिद्धांत आ जाते हैं। 'उप धर्म छूटै' से पारस्परिक भेद-भाव को दूर करने, 'नारि नर सम' से स्त्री-सुधार तथा 'सत्व निज भारत गहै' से स्वतन्त्रता प्राप्ति की ओर संकेत है। इस प्रकार यह भारत का प्रगतिशील पत्र था। विदेशों में इसकी प्रतियाँ जाती थीं। सरकार भी इसकी १०० प्रतियाँ खरीदती थी। इसके अतिरिक्त तत्कालीन सभी लेखक—राधाचरण गोस्वामी, बाबू गदाधरसिंह, लाला श्रीनिवासदास, बाबू सुमेरसिंह साहबज़ादे, बाबू ऐश्वर्यनारायणसिंह, बाबू नवीनचन्द्रराय, पण्डित दामोदर शास्त्री, पण्डित बिहारीलाल चौबे, पण्डित बिहारीलाल जानी इत्यादि सभी इस पत्र में अपने लेख दिया करते थे। बहुधा अवकाशाभाव के कारण इस पत्र के प्रकाशन में विलम्ब होता था। अतः पण्डित चिंतामणि के आग्रह से भारतेन्दु जी ने इस पत्र के प्रकाशन का भार रामाशंकर व्यास जी को सौंप दिया। इससे पत्र समय पर तो निकलने लगा किन्तु भारतेन्दु जी के सहयोग न देने के कारण तथा इलवर्ट सम्बन्धी आंदोलन में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का समर्थन करने के कारण यह पत्र जनता की दृष्टि में गिर गया।

सन् १८७३ ई० में काशी से भारतेन्दु जी ने एक अन्य पत्र 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का प्रकाशन किया। यह २४ पृष्ठों में निकलता था तथा मैटर भी दो कालम में निकलता था। इसके आवरण पृष्ठ पर इस पत्रिका का विवरण इस प्रकार छपता था—

"A monthly journal published in connection with the Kavivachan sudha containing articles on Library, Scientific, Politlcal, and religious subjects, antiquities, reviews, dramas, history, novels, poetical seletion, gossip, humour and wit."

उपर्युक्त विवरण से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु जी साहित्य,

विज्ञान, राजनीति, धर्म, इतिहास, नाटक, उपन्यास, काव्य, पुरातत्व, हास्य-विनोद आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार की रचनाएँ अपने पत्र में देना चाहते थे।

इस मैगजीन की आठ संख्याएँ निकलने के पश्चात् भारतेन्दु जी ने पत्र का नाम 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' से बदल कर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' रख दिया। इसके आवरण पृष्ठ पर निम्नलिखित सिद्धांत वाक्य अथवा विवरण छपता था—

विद्वत्कुलामलस्वांत कुमुदामोददायिका।
आर्यज्ञान-तमोहंत्री श्रीहरिश्चंद्रचंद्रिका॥

कविजन-कुमुद-गन हिय विकासि चकोर रसिकन सुख भरै।
प्रेमिन सुधा सों सींचि भारतभूमि आलस तम हरै॥
उद्यम सुऔषधि पोखि विरहिन तापि खल चोरन दरै।
हरिचन्द्र की यह चन्द्रिका परकासि जग मंगल करै॥

इस पत्रिका में गद्य-पद्यमय रचनाएं नाटक, उपन्यास, इतिहास, समालोचना, परिहास, पुरावृत्त—आदि विषय पर लेख निकलते थे। भारतेन्दु जी को प्रायः तत्कालीन सभी लेखकों एवं कवियों का सहयोग प्राप्त था। सन् १८७४ ई० के नवम्बर मास की पत्रिका पर ३१ सहायक सम्पादकों के नाम का उल्लेख है। भारतेन्दु जी ने प्रायः सभी पत्रिका में सहयोग देने वाले सभी लेखकों का नाम सहायक सम्पादक के रूप में दे दिया है। स्वामी दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, शेरिंग आदि विद्वानों का सहयोग भी पत्रिका को प्राप्त था। इस प्रकार यह पत्रिका दिन पर दिन अधिक लोकप्रिय होती गयी।

सन् १८८० ई० में भारतेन्दु जी ने इस पत्रिका का भार पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पड्या पर छोड़ दिया। वह इसे 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका' के नाम से निकालने लगे। दूसरे वर्ष यह मेवाड़ के श्रीनाथ द्वारे से प्रकाशित होने लगी। वहाँ जाकर यह सर्वदा के लिए लुप्त हो गयी। अतः सन् १८८४ ई० में भारतेन्दु जी ने इसे 'नवोदिता हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के नाम से प्रकाशित किया। दो ही अङ्क निकल पाये थे कि भारतेन्दु जी का स्वर्गवास हो गया। भारतेन्दु जी ने उसका तृतीय अङ्क प्रकाशित किया किन्तु

पंड्या जी ने उन्हें न छापने के लिए नोटिस दे दिया। इस प्रकार भारतेन्दुजी अल्पकाल ही जीवित रह सके; किन्तु इस समय में ही उन्होंने हिन्दी की आश्चर्यान्वित उन्नति कर दी।

भारतेन्दुजी ने स्त्रियों की उन्नति के लिए सन् १८७४ ई० के जनवरी मास से 'बाला-बोधिनी' नामक एक पत्र का प्रकाशन किया। भारत सरकार ने भी इस पत्र को अत्यन्त स्त्री-शिक्षोपयोगी समझकर १०० प्रतियाँ प्रतिमास लेना प्रारम्भ कर दिया। इसमें अधिकतर स्त्री-शिक्षोपयोगी लेख ही प्रकाशित होते थे। कभी-कभी मुद्राराक्षस नाटक तथा अन्य नीति विषयक इतिहास आदि भी छपते थे। इस पत्रिका के मुखपृष्ठ पर निम्नलिखित दोहे छपते थे—

'जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष यामें कछु न विभक्ति॥
सीता अनुसूया सती अरुन्धती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण लहौ सकल जग नारि॥
पितुपति सुत करतल कमल लालित ललना लोग।
पढ़ै गुनैं सीखैं सुनैं नासैं सब जग सोक॥
वीर प्रसविनी बुध बधू होइ हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की साँचेहि स्वामिन होय॥

इस प्रकार उपर्युक्त सिद्धान्त वाक्य से प्रतीत होता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नारियों के अलौकिक आदर्श तथा उनके पुरुष के समान अधिकार देने के पक्ष में थे। उनका कथन था कि समाज एवं राष्ट्र का कल्याण स्त्रियों पर ही अवलम्बित है। 'बालाबोधिनी' से उद्धृत कुछ अंश देखिए—

'हे, सुमति जब बालक तुम्हारा भली प्रकार बातचीत करने लगे तो उसको वर्णमाला याद कराती रहो फिर उन्हीं को पट्टी पै लिख के अभ्यास कराओ और रातों को गिनती और सुन्दर-सुन्दर श्लोक वा छोटे स्तोत्र याद कराओ। इस व्यौहार में कई एक बातें सुन्दर प्राप्त होंगी। प्रथम तो बालक को खेल ही खेल में अक्षर ज्ञान हो जावेगा दूसरे उसका काल भी व्यर्थ नहीं जाने का। फिर इस अवसर का पढ़ा लिखा विशेष करके याद रहता है।'

यह पत्र चार वर्ष तक प्रकाशित होता रहा। अन्त में जब सरकार ने इसकी १०० प्रतियाँ लेना बन्द कर दिया, तो यह पत्र भी बन्द हो गया। इस सब का कारण सरकार की कोप-दृष्टि हुई। भारतेन्दु जो स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। वह निष्पक्ष राजनीतिक लेख छापते थे। सरकार के चाटुकारों को अवसर मिला। उन्होंने भारतेन्दुजी के लेखों को सरकारी नीति की कटु आलोचना बताकर चुगली करना प्रारम्भ करा दिया। अतः जो कविताएँ अथवा लेख हास्यरस का आश्रय लेकर छपते थे, वे अपमान सूचक सिद्ध किये जाने लगे। धीरे-धीरे अङ्गरेजी सरकार भारतेन्दु जी के विरोध में होती गयी। भारतेन्दु जी ने भी सरकार का यह अनौचित्य देखकर म्यूनिसपल कमिश्नर तथा आनरेरी मजिस्ट्रेट के पदों से त्यागपत्र दे दिया। इससे जनता में भारतेन्दु जी के पत्रों का अधिकाधिक मान होने लगा और हिन्दी के तत्कालीन योग्य तथा उच्चकोटि के लेखक भी अपना पूर्ण सहयोग देने लगे।

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु जी उच्चकोटि के पत्रकार थे। उनकी साहित्यिक रुचि होने के कारण पत्र-साहित्य में अधिकाधिक उन्नति होती गयी। राष्ट्रीयता की भावना के जागरण का श्रेय तो भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द को ही दिया जाएगा। हिन्दी का पक्ष लेकर उन्होंने हिन्दू समाज में एक नवीन भावना का समावेश किया है। भारतेन्दु जैसे पत्रसेवी और साहित्यकार की प्रेरणा से हिन्दी में अनेक पत्रों के प्रकाशन का श्रीगणेश हुआ। सर्वप्रथम उनकी प्रेरणा से काशी नार्मल स्कूल के प्रधानाध्यापक ने 'काशी पत्रिका' का प्रकाशन किया। तदनन्तर १८८४ ई० में रामकृष्ण वर्मा ने काशी से 'भारत जीवन' पत्र निकाला। इनके अतिरिक्त 'आर्य मित्र' 'तिमिर नाशक', 'सरस्वती विलास' आदि पत्र काशी से ही निकले। श्री अम्बिकादत्त व्यास जी ने 'वैष्णव पत्रिका' का प्रकाशन किया जो आगे चलकर 'पीयूष-प्रवाह' के नाम से प्रकाशित होती रही। भारतेन्दु जी का तो देशव्यापीय प्रभाव पड़ा था। अतः काशी के अतिरिक्त अन्य स्थानों से भी पत्र प्रकाशित हुए। कलकत्ते से कार्तिक प्रसाद जी द्वारा 'प्रेम विलासिनी' का प्रकाशन किया गया। वह आसाम के 'उचित वक्ता', 'हिन्दुस्थान', 'दिनकर प्रकाश' आदि के लिए भी लेख भेजते थे। 'हिन्दी बंगवासी', 'आर्यावर्त', 'उचितवक्ता' 'भारत मित्र'

आदि पत्र भी कलकत्ते से निकले। इस प्रकार लखनऊ से 'दिनकर प्रकाश', 'रसिक पंच', 'काव्यमृत वर्षिणी', 'भारत भानु' आदि इलाहाबाद से 'हिन्दी प्रदीप', 'प्रयाग समाचार', वृन्दावन से 'भारतेन्दु' इत्यादि पत्र प्रकाशित हुए। सारे भारत में एकदम पत्रों के प्रकाशन की बाढ़ आगयी। इस सब का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द को ही है।

सारांश यह है कि हिन्दी साहित्य में पत्रों के प्रकाशन करने का श्रेय भारतेन्दु जी को ही है। वही पत्रों के जन्मदाता एवं उन्नायक कहे जाएँगे। हिन्दी पत्र-साहित्य का इतिहास भारतेन्दु बाबू की प्रेरणा एवं प्रयत्न का इतिहास है।

प्रश्न ९—भारतेन्दु जी को काव्य-कला पर एक सुन्दर आलोचनात्मक निबंध लिखिये।

उत्तर—किसी कवि की काव्य-कला की पावन झाँकी करने के लिए हमें दो पक्षों से देखना पड़ता है। प्रथम कलापक्ष द्वितीय भावपक्ष। कलापक्ष से हमारा अभिप्राय उस कवि के भाषा-सौन्दर्य, अलङ्कार-प्रदर्शन एव छन्द-कौशल से होता है तथा भाव-पक्ष से भाव व्यंजना एवं रस-परिपाक से। इस दृष्टि से भारतेन्दु जी महान कवि एवं युग-नेता थे। उन्होंने काव्य के सभी अङ्गों को स्पर्श कर कचन बना दिया। एक ओर उन्होंने प्राचीन काव्य शैलियों का कुशलता के साथ पालन किया तो दूसरी ओर नवीनोन्मुखी रचनाओं को जन्म दिया। दो युगों की शैलियों का अनुपम समन्वय ही उनके काव्य की विशेषता है। उनकी दृष्टि प्राचीन तथा नवीन दोनों कालों की ओर थी। प्राचीनता और नवीनता में अद्‌भुत सामंजस्य स्थापित कर वह युगस्रष्टा बन गये। इस प्रकार भारतेन्दुजी के काव्य में तत्कालीन काव्य की सभी प्रवृत्तियाँ पूर्णरूप से लक्षित होती है। विषय की विविधता की दृष्टि से भारतेन्दु की काव्य-रचनाएँ चार धाराओं में विभाजित हो सकती है :—

भक्ति-सम्बन्धी रचनाएँ, रीति सम्बन्धी रचनाएँ, प्राचीन परम्परा सम्बन्धी रचनाएँ तथा नवीनोन्मुखी रचनाएँ।

भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ—भारतेन्दु जी सच्चा भक्त हृदय रखते थे। वह वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उन्होंने अपनी भक्ति के चार स्तम्भ माने

हैं—राधावल्लभ (कृष्ण), वल्लभी (राधा) वल्लभ, (आचार्य महाप्रभु), और वल्लभताई (वल्लभ सम्प्रदाय)।

'राधाबल्लभ, बल्लभी, बल्लभ, बल्लभताई।
चार नाम वपु एक पद बन्दत सीस नवाइ ॥'

उनके हृदय में अगाध प्रेम तथा भक्तों की सी लगन थी। उनके स्वर में सूर, तुलसी, मीराबाई, रसखान आदि का स्वर प्रतिध्वनित था। निम्नलिखित पक्तियाँ उनके भक्ति हृदय की प्रतीक हैं। देखिए :—

'भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरव घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥'

वैष्णव धर्म भारतेन्दु जी का कुल धर्म था। इसलिए वह युगल-मूर्ति के उपासक थे।

हम चाकर राधा रानी के।
ठाकुर श्री नन्दनन्दन के वृषभानु लली ठकुरानी के ॥
निरभय रहत कहत नहिं काहू डर नहीं डरत भवानी के।
'हरिचन्द' नित रहत दिबाने सूरत अजब निसानी के ॥'

यही नहीं, दूसरे स्थान पर भी उन्होंने यही कहा है।

'सरबस रसिक के सुदास दास प्रेमिन के,
सखौ प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के।'

सूर की भाँति भारतेन्दु जी बृजभूमि के भी उपासक थे। देखिए—

'बृज के लता पता मोहिं कीजै।
गोपी पद पंकज पावन की रज जामैं सिर भीजै।
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै ॥
श्री राधे-राधे मुख यह वर 'हरिचन्द' को दीजै।'

सूर की भाँति भारतेन्दु जी की भक्ति में दीनता के साथ अक्खड़पन भी था। वह जीव को भी भगवान के साथ अनन्त बनाना चाहते थे। उनका कथन था कि भगवान गुणों की दृष्टि से अनन्त है तो जीव भी अवगुणों की दृष्टि से अनन्त है। उनका कहना था कि पापों का कारण भगवान का मायावाद है।

'कहो किमि छूटै नाथ-सुभाव।
काम क्रोध अभिमान मोह संग,
तन को बन्यौ बनाव ।।
ताहू मैं तव माया सिर पै,
औरहु करन कुदावँ ।
'हरीचन्द' बिन नाथ कृपा के
नाहिन और उपाव ।।'

इस प्रकार भारतेन्दु जी की भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में बाललीला, विनय, प्रेम सम्बन्धी तथा सख्यभाव सम्बन्धी आदि सभी प्रकार के पद प्राप्त होते हैं। राधाकृष्ण के प्रेम, मान और विरह, उद्धव और गोपी संवाद आदि विषयों पर भी भारतेन्दु जी ने अत्यन्त सरस एव मर्मस्पर्शी रचनाएँ की हैं। उन्होंने 'चन्द्रावली' आदि नाटक में भी अपनी भक्ति भावना की तन्मयता प्रकट की है। ऐसे स्थलों पर भारतेन्दु जी भगवान को मीराबाई की भाँति प्रियतम के रूप में देखने लगते हैं।

'मङ्गल भयो चोर मुख निरखत।
मिटे सकल निसि दाग ।।
हरीचन्द आओ गर लागो ।
साँचो करो सोहाग ।।'

× × ×

'तो सों और न कछु प्रभु जाचौं।
विस्कुलिङ्ग से जग-दुख तजि तव ।।
विरह - अगिन तन ताचौं ।।'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह साम्प्रदायिकता के बन्धन से पूर्ण मुक्त है। इसी दृष्टि से वह सच्चे मानव एवं सच्चे भक्त के रूप में दिखाई देते हैं। कबीर की भाँति भारतेन्दु जी की भक्ति की व्यापकता देखिए ।

'साँझ सबेरे पंछी सब क्या,
कहते हैं कुछ तेरा है।

हम सब इक दिन उड़ जायँगे,
यह दिन चार बसेरा है ॥'

सारांश यह है कि भारतेन्दु जी में अपने धर्म को सर्वोपरि समझने वाली सकुचित मनोवृत्ति नहीं थी। ईसाई, मुसलमान तथा जैन आदि अन्य धर्मों से उन्हें किसी प्रकार का विद्वेष नहीं था। वह तो सच्चे प्रेम को ही महत्व देते थे। उनके कथनानुसार सच्चा प्रेम ही सच्ची एवं निष्काम भक्ति का आधार है। 'प्रेम में मीन-मेष कछु नाहीं।'

\+ + +

'दृढ़ फिरा मैं इस दुनियां में पश्चिम से ले पूरब तक।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक ॥
मसजिद मंदिर गिरजों में देखा मतवालों का जा दौर।
अपने-अपने रँग में रँगा दिखाया सब का तौर।
सिवा झूठी बातों व बनावट के न नजर आया कुछ और॥'

\+ + +

'पियारो पैये केवल प्रेम मैं।
नाहिं ज्ञान मैं नाहिं ध्यान मैं,
नाहिं करम कुल नेम मैं।

÷ ÷ ÷

नहिं मन्दिर मैं, नहिं पूजा मैं,
नहिं घण्टा की घोर मैं।
'हरीचन्द' वह बाँध्यो डोलत,
एक प्रीति के डोर मैं।

इस प्रकार भारतेन्दुजी अत्यन्त ही उदार भावना के कवि थे। खण्डनवाद के तो वह पूर्ण विरोधी थे।

खंडन जग में काको कीजै।
सब मत तो अपने ही हैं, उनको कहा उत्तर दीजै॥
तासें बाहर होइ कोऊ जब तब कछु भेद बतावै।
ह्याँ तो वही सबै मत ताके तहँ दूजो क्यों आवै॥'

'धरम सब अटक्यौ याही बीच ।
अपनी आप प्रशंसा करनी, दूजेन कहनो नीच ।
यहै बात सबने सीखी है, का वैदिक का जैन ।।

कहने का सारांश यह है कि भारतेन्दुजी एक सच्चे भक्त कवि थे। वह वैष्णव कवि होते हुए भी अत्यन्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते थे। भारतेन्दु के जीवन का आधार प्रेम था। उन्होंने यथेष्ट का अनुभव किया था। इसीलिए उनके हृदय के अन्तस्तल से निकले लगभग एक सहस्र पदों में यथार्थता, तन्मयता, सरलता, सरसता आदि गुण कूट-कूट कर भरे हैं। 'यदि वाक्यरसात्मकं काव्यं' अर्थात् रस से भरा हुआ वाक्य ही काव्य है, तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दु जी की भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में उनकी आन्तरिक अनुभूति अलौकिक रूप से व्यञ्जित हुई है। एक ओर भारतेन्दु जी ने अपने सम्प्रदाय से सम्बन्धित अनेक व्यक्ति सम्बन्धित ग्रंथों का प्रणयन किया तो दूसरी ओर कबीर की भाँति धर्म का व्यापक रूप सामने रक्खा। सक्षेप में उन्होंने अपनी भक्ति को कोई आवरण नही पहिनाया। वह तो अत्यंत सरल हृदय-गायक-भक्त थे। विषयों की विविधता, सरसता, तन्मयता आदि के कारण वह भक्ति के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं।

रीति सम्बन्धी रचनाएँ—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक सरस एवं भावुक व्यक्ति थे। प्रेम तथा रसात्मकता ही उनके जीवन के आधार थे। यही कारण है कि वह एक ओर भक्त कवि के रूप में दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर रीति-कवि के रूप में। उनकी अनेक भक्तिपूर्ण रचनाएँ प्रत्यक्षतः रीति एवं शृङ्गार रस-संबधित प्रतीत होती हैं। इसके विपरीत अनेक रीति-सबधित एवं शृङ्गार-रस पूर्ण रचनाओं में भक्ति की मधुर व्यंजना दिखाई देती है। संक्षेप में भारतेन्दुजी ने भक्ति एवं रीति सम्बन्धी रचनाओं द्वारा मध्ययुग से अपना सम्बन्ध स्थापित किया। एक ओर उनकी भक्ति सम्बन्धी रचनाओं पर कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई आदि का प्रभाव लक्षित होता है तो दूसरी ओर रीति सम्बन्धी रचनाओं पर आचार्य देव, घनानन्द, ठाकुर, पद्माकर आदि कवियों की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। इस प्रकार भारतेन्दु जी भक्त-कवि होने के साथ-साथ रीतिकालीन परम्परा का भी पूर्ण पालन करते दिखाई देते हैं।

स्वर्गीय सत्यनारायण कविरत्न ने भी ब्रजभाषा की महिमा का गान करते हुए भारतेन्दुजी को रीतिकाल के महान कवियों की परम्परा में रक्खा है—

'केशव अरु मतिराम बिहारी देव अनूपम।
हरिश्चन्द्र से जासु कूल कुसुमित–रसालद्रुम।।'

रीतिकाल शृङ्गारिक कविता का युग कहा जा सकता है। इस काल में नायिका-भेद कवियों का मुख्य विषय रहा। भूषण तथा रहीम जैसे कवि भी इस छूत से अपने को मुक्त न रख सके। भारतेन्दु जी ने भी रीतिकालीन कवियों का अनुसरण कर खंडिता, कृष्णाभिसारिका, अभिसारिका, वासक-सज्जा, विरहोत्कंठिता आदि नायिकाओं, षटऋतु, बारहमासा, दूती, मान, विरह, नखशिख आदि अनेक वर्णन किये हैं। खंडिता नायिका का एक चित्र देखिए—

'श्याम पियारे काज हमारे,
भोरहि क्यों पगु धारे।
बिन मादक ही आज कहौ,
क्यौं घूमत नैन तुम्हारे।।'

अभिसारिका नायिका के दोनों भेद शुक्लाभिसारिका और कृष्णाभिसारिका नायिकाओं के चित्र देखिए—

'दीपन उल्टी करी सहाय।
चली गई पिय पास प्रगट मग।
काहू न परी लखाय।।'

→ ↑ ←

दामिनि वैरिनि वैर परी।
जान न देत पिया प्यारे ढिग-
प्रगटत बात दुरी।।
रैन अँधेरी स्याम बसन तन,
जद्यपि रहत घरी।
तऊ चमकि बिनु बात बैरिनी,
मेरी लाज हरी।।'

भारतेन्दु जी ने काव्य का कोई अङ्ग ऐसा नहीं छोड़ा जिस पर उन्होंने अपनी लेखनी न चलाई हो। वासकसज्जा नायिका का एक चित्र देखिए। इस सवैया में घनानंद, ठाकुर आदि रीतिकालीन कवियो की शैली का अनुकरण है।

'काले परे कोस चलि चलि थकि गये पाय,
सुख के कसाले परे ताले परे नस के।
रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे,
मदन के पाले परे प्रान परवस के॥
'हरीचन्द' अङ्ग हू हवाले परे रोगन के,
सोगन के भाले परे तन बल खसके।
पगन में छाले परे बाँधिवे को नाले परे,
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के॥'

नायिका भेद के अतिरिक्त, शृंगार रस वर्णन भी रीतिकालीन कवियों का मुख्य विषय रहा है। शृंगार रस के दो पक्ष होते हैं—संयोग और वियोग। भारतेन्दुजी ने भी दोनों पक्षों को स्थान दिया है। सयोग और षटऋतु वर्णन में उनके वर्णन सेनापति तथा पद्माकर आदि रीतिकालीन शृंगारी कवियों की भाँति अश्लीलता की सीमा का अतिक्रमण कर गये हैं। देखिए-

'दोउ मिलि बिहरत जमुना तीर मैं।
करि करके जलयंत्र चलावत,
भीजि रही लट नीर में॥'—राग संग्रह
'कमल नैन प्यारी झुलावै पिय प्यारी।
कबहुँक भौंटा देत कबहुँक लगावै कंठ;
कबहूँ सँवारत सारी, करत मनुहारी।—वर्षा विनोद
'बे देखो पौढ़े ऊँचे महल दोउ,
झलकत रूप झरोकन आई।
हँसनि मुरनि बतरानि परस्पर,
कछुक दूर है परत लखाई॥'—राग सारंग

'कुंज बिहारी हरि संग खेलत
कुंज बिहारिनि राधा।
आनन्द भरी सगी संग लीने,
मेटि विरह की बाधा ॥'

रीतिकालीन कवियों ने संयोग की अपेक्षा वियोग को मुख्य स्थान दिया है। इसके तीन भेद होते हैं—मान, प्रवास और मरण। भारतेन्दु जी ने तीनों भेदों को अपनाकर विरहिणी नायिकाओं के सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किये हैं। उन्होंने रीतिकालीन कवियों की भाँति अतिपूर्ण वर्णन न करके, विविध उद्दीपनों का अत्यन्त ही चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है। उनके वियोग वर्णन में स्वाभाविकता है जो पाठक को मन्त्र-मुग्ध किये बिना नहीं रहती है। देखिए—

'कूकै लगीं कोइलैं कदम्बन पै बैठि फेरि,
धोइ धोइ पात हिलहिल सरसै लगे।
बोलै लगै दादुर मयूर लगे नाचै फेरि,
देखि कै संजोगी जन हिय हरसै लगे ॥
हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी,
लखि 'हरिश्चंद' फेरि प्रान तरसै लगे।
फेरि झूमि-झूमि वरषा की ऋतु आई फेरि,
बादर निगोरे झुकि झुकि बरसै लगे ॥

वियोग शृङ्गार के अन्तर्गत प्रवास विषयक कविता का विशेष स्थान है। रीतिकालीन कवियों की भांति भारतेन्दु जी ने भी विरह की सभी अवस्थाओं के अत्यन्त ही मनोरम चित्र चित्रित किये हैं। 'प्रवास' का एक चित्र देखिए—

'मन मोहन ते बिछुरी जब सों, तन आँसुन सो सदा धोवती हैं।
हरिचंद जू प्रेम के फंद परी, कुल की कुल लाजहिं खोवती हैं ॥
दुख के दिन को कोऊ भांति बितै, बिरहागम रैन सजोवती हैं।
हमही अपुनी दशा जानैं सखी, निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं ॥'

यहीं नहीं विरह की प्रारम्भ में तीन अवस्थाएँ होती हैं—अभिलाषा,

चिन्ता और स्मृति। इन तीनों दशाओं का चित्रण भारतेन्दु बाबू ने कितने सुन्दर ढंग से किया है।

'पहिले मुसकाइ लजाइ कछू क्यों चितै मुरि मो तन छाम कियौ।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ कै प्रीति निबाहन को क्यों कलाम कियौ॥
'हरिचंद्र' भए निरमोही इते निज नेह को यों परिनाम कियौ।
मन मांहि जो तोरन ही की हुती अपनाइ के क्यों बदनाम कियौ॥'

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु जी की भांति विरह की ऐसी मार्मिक, हृदय स्पर्शी व्यंजना उच्चकोटि के कवियों में ही मिल सकती है। उनके शृंगारमय वर्णन अधिक स्वाभाविक हैं। 'प्रेम-मालिका', 'प्रेमतरंग', 'प्रेमसरोवर', 'प्रेमाश्रु वर्णन', 'प्रेममाधुरी', 'प्रेमप्रलाप', 'सतसई सिंगार', 'होली', 'मधुमुकुल', 'रागसग्रह', 'वर्षा विनोद', 'प्रेम फुलवारी' आदि ग्रन्थों में भारतेन्दु जी ने रीतिकालीन परिपाटी का पालन किया है। इस दृष्टि से उनकी रीति सम्बन्धी रचनाएँ एक साहित्यिक विशेषता रखती हैं।

प्राचीन परम्परा सम्बन्धी रचनाएँ—भारतेन्दु बाबू बहुमुखी प्रतिभा के कवि थे। भक्ति तथा रीति सम्बन्धी रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने काव्य कला का प्राचीन आदर्श—समस्या पूर्ति को भी अपनाया। वह तो एक आशु कवि थे। काशी नागरिणी सभा द्वारा प्रकाशित उनके काव्य-संग्रह में उनकी समस्या पूर्ति की रचनाएँ सग्रहीत हैं। उनमें हमें भारतेन्दुजी की काव्य प्रतिभा की अलौकिक झाँकी होती है। सरसता और चमत्कार तो ऐसी रचनाओं के स्वाभाविक गुण हैं। उदाहरण के लिए एक समस्या है—'पिय प्यारे तिहारे बिना अँखिया दुखिया नहीं मानती हैं।'

'यह संग में लागियै डोलैं सदा बिन देखे न धीरज आनती हैं।
छिनहू जो वियोग परै 'हरिचंद' तो चाल प्रलै की सुठानती हैं॥
बसनी में घिरैं न झपैं उझपैं पल में न समाइवो जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ नहिं मानती हैं॥'

इसके अतिरिक्त अमीर खुसरो द्वारा रचित मुकरियों की शैली पर भारतेन्दुजी ने भी भावव्यंजना पूर्ण मुकरियों की रचना की। उन्होंने अपनी मुकरियों द्वारा राजनीतिक शासन सम्बन्धी तीखे व्यंग्य कसे हैं। देखिए—

'सब गुरुजन को बुरौ बतावै।
अपनी खिचड़ी अलग पकावै॥
भीतर तत्व न झूठी तेजी।
क्यों सखि सज्जन नहिं अँग्रेजी॥
'मुँह जब लागै तब नहिं छूटै।
जाति मान धन सब कुछ लूटै॥
पागल करि मोहिं करे खराब।
क्यो सखि सज्जन नहीं सराब॥'

नवीनोन्मुखी रचनाएँ—भारतेन्दु बाबू एक ओर अपनी भक्ति, रीति तथा प्राचीन परम्परा सम्बन्धी रचनाओं द्वारा मध्य-युग से सम्बन्ध स्थापित करते हुए प्रतीत होते हैं, तो दूसरी ओर नवीनोन्मुखी रचनाओ द्वारा वह नवयुग स्रष्टा के रूप में दिखाई देते हैं। उन्होंने अनेक मौलिक उद्भावनाओ को जन्म देकर नवयुग का निर्माण किया। इस दृष्टि से यदि हम उन्हे राष्ट्रीय कवि कहें, तो अत्युक्ति न होगी। गौरवशालिन भारत वसुन्धरा के अतीत के गौरव का स्मरण कर उनका हृदय फूट-फूट कर रोने लगता है—

'रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥'

यही नहीं उन्होंने अत्यन्त चतुरता के साथ देशवासियों को देश के आर्थिक शोषण का ज्ञान कराया।

'अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी॥'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चद्र प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने देशोन्नति के लिए सबसे बड़ा मूलमन्त्र 'मातृभाषा की उन्नति' बताया। यही कारण है कि उन्होंने देशवासियों का ध्यान हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति की ओर आकृष्ट किया। उनका उद्बोधन देखिए :—

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञानके मिटत न हिय को सूल॥'

\+ + + +

'करहु बिलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटाबहु सूल ।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल ।।
लहहु आर्य भ्राता सबै विद्या बल बुधि ज्ञान ।
मेटि परस्पर द्रोह मिलि होहु सबै गुन खान ।।

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने आलसी, निरुद्यमी, कलहप्रिय देशवासियों से उन्नति करने, सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियो एवं कुप्रथाओं का दूर करने का दिव्य संदेश दिया। वह परम्परागत सनातन धर्म में युग के अनुकूल सुधार करने के पक्षपाती थे। उनके एक प्रशस्ति-वाक्य को देखिए: –

'खलगनन सों सज्जन दुखी मत होहिं, हरिपद रति रहै ।
उपधर्म छूटै, सत्व निज भारत गहै कर दुख बहै ।
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सब जग सुख लहै ।
तजि ग्राम कविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै ।।'

खड़ी बोली को परिष्कृत रूप देने वाले भारतेन्दु बाबू ही कहे जाएँगे। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक हिन्दी काव्य का श्रीगणेश उन्होने ही किया। उन्होने हिन्दी कविता में नवीन चिन्तनविधि को प्रस्तुत कर, भाषा, भाव तथा वर्ण्य विषय में परिवर्तन कर हिन्दी को रीति-कालीन गन्दी गलियो से निकालकर नवीन विषयों का समावेष कर, प्रगतिशील साहित्य का निर्माण किया। सारांश यह है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चद्र ही नवयुग के निर्माता तथा आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रवर्त्तक कहे जाएँगे।

इसके पश्चात् हमें भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी के भाषा सौंदर्य, अलङ्कार-प्रदर्शन, छद कौशल, भाव-व्यंजना, रस परिपाक आदि पर विहंगम दृष्टि डालनी है।

भाषा– जिस समय भारतेन्दु बाबू हरिश्चद्र ने साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया, उस समय गद्य के रूप में खड़ी बोली निर्विवाद स्वीकृत हो चुकी थी किन्तु विदेशी शासकों की नीति के फलस्वरूप हिन्दी उर्दू का संघर्ष उठ खड़ा हुआ था। कुछ व्यक्ति उर्दू मिश्रित हिन्दी के पक्षपाती थे। अन्य व्यक्तियों का कथन था कि बिना संस्कृत के मिश्रण के हिन्दी में गाम्भीर्य नहीं

आ सकता। ऐसे लोगों ने विदेशी शब्दों का पूर्ण बहिष्कार किया। भारतेन्दु बाबू अतिवादी नहीं थे। अतः उन्होंने मध्यम मार्ग ग्रहण किया। उन्होंने न तो संस्कृत की क्लिष्ट पदावली का ही प्रयोग किया और न अप्रचलित अरबी, फारसी के शब्दों का। उन्होंने हिन्दी की जातीय शैली की रक्षा का विशेष ध्यान रक्खा। सक्षेप में भारतेन्दुजी के गद्य काव्य की शैली तीन प्रकार की है :—

सस्कृत-गर्भित क्लिष्ट शैली, संस्कृत मिश्रित सरल शैली, शुद्ध-हिन्दी।

प्रथम और द्वितीय प्रकार की शैलियों में भारतेन्दुजी की रचनाएँ अत्यन्त ही अल्प मात्रा में हैं। सस्कृत-गर्भित क्लिष्ट शैली को देखिए—

'मयूरादि अनेक पक्षीगण प्रफुल्लित चित्त से रव कर रहे हैं और वैसे ही दर्दुरगण पंकाभिषेक करके कुकवियों की भांति कर्ण-बेधक ढक्का झकारसा भयानक शब्द करते हैं।'

द्वितीय प्रकार की शैली सरल है। इसमें अत्यन्त ही थोड़े रूप में संस्कृत के शब्द मिलेंगे देखिए—

'सब विदेशी लोग घर आए और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया। पुल टूट गए बाँध खुल गए पंक से पृथ्वी भर गई पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाए बहुत वृक्ष समेत फूल तोड़ गिराए सर्प बिलों से बाहर निकले महा नदियों ने मर्यादा भंग करदी और स्वतन्त्रता स्त्रियों की भांति उमड़ चली।'

भारतेन्दु जी की तृतीय प्रकार की शैली हिन्दी की जातीय शैली है। इसे हम दूसरे शब्दों में 'शुद्ध हिन्दी' की शैली पुकारेंगे। उन्होंने अपने गद्य-काव्य के लिए भाषा का यही स्वरूप ग्रहण किया। यह साधारण रूप से अलंकृत तथा संस्कृत पदावली से मुक्त भाषा है। इसमें तद्भव, देशज, प्रचलित कहावतों, मुहावरों का पुट अधिक है। उन्होंने गम्भीर विचारों की विवेचना के लिए सरस-भाषा का ही प्रयोग किया है। कवि होने के कारण भारतेन्दुजी के गद्य में कभी-कभी हमें कवित्व की पावन झाँकी होने लगती है। संक्षेप में उनकी इस शैली में श्रुतकटु शब्दों का अभाव है। विदग्धता, सरसता, स्वाभाविकता आदि गुण कूट-कूट कर भरे हैं। उनकी शुद्ध हिन्दी का एक

उदाहरण देखिए :—

'मेरे प्रीतम अब तक घर न आए, क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फन्दे में पड़ गये कि इधर को सुध ही भूल गये। कहाँ (तो) वह प्यार की बातें, कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहाँ जाऊँ कैसी करूँ मेरी तो ऐसी कोई मुँह बोली सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ कुछ इधर उधर की बातों से जी बहलाऊँ।'

भारतेन्दुजी ने पद्य काव्य में ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया। उन्होंने अपनी अलौकिक काव्य प्रतिभा के द्वारा ब्रजभाषा को युग के अनुकूल बना लिया। उनके युग तक ब्रजभाषा मे कुछ दोष आ गये थे किन्तु उन्होंने ब्रज-भाषा का परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप ही ग्रहण किया। इस प्रकार उनकी काव्य भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। उनकी रचनाओं में भाषा और भाव दोनों ही सबल हैं। अनुकूल एव सुन्दर शब्द-चयन, कोमलकान्त पदावली, भाव-व्यंजक वाक्यविन्यास, अलौकिक वाग्-वैचित्र्य, परिष्कृत अभिव्यजना, आदि गुण उनकी रचनाओं के स्वाभाविक गुण हैं। प्रसाद और माधुर्य तो कूट-कूट कर भरा है। उन्होंने काव्य-विरोधी कठोर वर्णों और दुरुह शब्दों का पूर्ण बहिष्कार कर भाषा में ऐसा अनुपम आकर्षण उत्पन्न कर दिया है जो पाठको को मन्त्र-मुग्ध किये बिना नहीं रहता है। संक्षेप में भारतेन्दुजी ब्रजभाषा को नैसर्गिक सौंदर्य प्रदान करने वाले कवि हैं। ब्रजभाषा का परिष्कृत रूप देखिए—

'आजु लौं जौ न मिले तो कहा हम तो तुमरे सब भांति कहावैं।
मेरो उराहनो है कछु नाहिं सबै फल आपुने भाग को पावैं।
जो 'हरिचंद' भई सो भई अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति बिदा की समै सब कंठ लगावैं।'

भारतेन्दुजी बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने खड़ी बोली में भी कविता करने का प्रयत्न किया।

'कहाँ हो, ए हमारे राम प्यारे।
किधर तुम छोड़ मुझको सिधारे?

बुढ़ापे में "ये", दुख भी देखना था !
इसी के देखने को मैं बचा था !

अथवा

'फागुन के दिन बीत चले अब ऋतु बसत आई,
बदला समा चली झोंके से झुकी पुरवाई।
गर्मी के आगम दिखलाये रात लगी घटने,
कुहू-कुहू कोयल पेड़ों पर बैठ लगी रटने।

सारांश यह है कि भारतेन्दुजी ने सभी प्रकार की भाषा-शैलियों का प्रयोग कर अपनी भाषा-बहुज्ञता का परिचय दिया। उन्होने उर्दू की गजलें आदि की शैली पर भी कविताएँ लिखीं तथा अँगरेजी की भी दो एक कविताएँ लिखीं। इस दृष्टि से वह सभी भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित थे।

अलकार प्रदर्शन—भारतेन्दुजी जिस समय साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुए, उस समय हिन्दी कविता अलङ्कारों के भार से दबी जा रही थी। उसमें साहित्यिक सौष्ठव का अभाव था। नीरस उक्तिवैचित्र्य ही कविता का प्रधान गुण समझा जाता था। फलतः कविता में कृत्रिमता तथा अस्वाभाविकता स्पष्ट दिखाई देती थी। भारतेन्दुजी तो समन्वयात्मक दृष्टिकोण के व्यक्ति थे। उन्होंने कविता में भावों और अलंकारों का सुन्दर समन्वय उपस्थित किया। उन्होंने हिन्दी कविता-कामिनी को निरंलकृत नहीं किया वरन् भावों का विशेष महत्व देकर उसके सौदर्य को द्विगुणित कर दिया। रीतिकालीन कवियों ने अलकारों का प्रयोग केवल अलंकार-प्रदर्शन के लिए किया था, भारतेन्दुजी ने अलंकारों का प्रयोग भाव एवं शब्द चित्रण के लिए। उनके यमुना वर्णन में तरल ऊर्मियों के थिरकते हुए आलोक को देखिए—

'मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै,
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै।
कै वालमुड़ी नभ में उड़ी सोहति इत उत धावती,
कै अवगाहत डोलत कोउ ब्रज रमनी इत आवती।'

स्वीकार करना पड़ेगा कि चित्रोपमता ही भारतेन्दुजी के काव्य की विशेषता है। उपर्युक्त अवतरण में उन्होंने एक ओर उत्प्रेक्षा अलंकार का

अवलम्बन लेकर चित्र को साकार बनाने का प्रयास किया है, तो दूसरी ओर 'कै' शब्द का अवलम्बन लेकर सन्देह अलंकार का अनुपम समन्वय उपस्थित कर दिया है। ऐसी संश्लिष्ट योजना अन्य कवियों में पाना नितान्त दुर्लभ है। उन्होने अलंकारों का मार्मिक चित्रण कर अपनी काव्य-प्रतिभा का भूरि-भूरि परिचय दिया है। एक विरहिणी नायिका का खण्ड चित्र देखिए—

'उमड़ि-उमड़ि दृग रोअत अबीर भए,
मुख दुति पीरी परी विरह महामारी।'

असंगति अलंकार का कैसा अनुपम चित्र है। नायिका के नेत्रों से प्रवाहित होते हुए अश्रु वर्षा का रूप धारण किये हुए हैं। निरंतर रोने के कारण नेत्रों की लालिमा वीर-बहूटियों का रूप है। वर्षा होने पर जीवन हरित होना चाहिए किन्तु नायिका पीली पड़ती हुई, मुरझाती जा रही है। कैसा साकार चित्र है।

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दुजी ने अलंकारों का स्वाभाविक चित्रण कर अपने काव्य में एक नवीन सौदर्य का समावेश कर दिया है। उनके भक्तिपरक काव्य में तो अलंकारों का बाहुल्य है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उनके अत्यन्त प्रिय अलंकार हैं। इनके अतिरिक्त सन्देह, अतिशयोक्ति, लोकोक्ति, दृष्टान्त, परिकर, स्वाभावोक्ति, व्याजस्तुति आदि अलंकार भी उनके काव्य में प्रचुरता से पाये जाते हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि अलंकारों के प्रयोग करने में तो भारतेन्दुजी पूर्ण सिद्धहस्त प्रतीत होते हैं। उत्प्रेक्षा पूर्ण सांगरूपक का उदाहरण देखिए—

'चपला की चमक चहुँधा सों लगाई चिता,
चिनगी चिलक पट बीजना चलायो है।
हेती बगमाल स्याम बादर सु-भूमिकारी,
वीर बधू लहू बूँद मुव लपटायो है।
'हरीचन्द्र' नीर धार आँसू सी परत जहाँ,
दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है।
दाहन वियोग दुखियान को मरे हूँ यह,
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥'

बादल पर कही गयी एक अन्योक्ति देखिए । दानी को दान देने में ही अतीव आनन्द प्राप्त होता है । वह प्रतिफल नहीं चाहता ।

'चातक को दुख दूर कियो पुनि दीनो सबै जग जीवन भारी ।
पूरे नदी-नद-ताल-तलैया किए सब भांति किसान सुखारी ।
सूखे हू रूखन कीने हरे जग पूज्यौ महामुद दै निज बारी ।
हे घन आसिन लौं इतनी करि रीते भए हू बड़ाई तिहारी ॥'

विनोक्ति के प्रयोग की सुन्दर लावनी देखिए—

पीते हैं जिगर का खून आब के बदले ।
खाते हैं सदा हम गम कबाब के बदले ।
खुशबू तेरी सूँघी गुलाब के बदले ।
लेते हैं नाम तेरा किताब के बदले ॥'

अलङ्कारों के अलौकिक प्रदर्शन के अतिरिक्त भारतेन्दुजी ने वर्णों और अङ्कों के चित्र चित्रित करने का प्रयास किया है । देखिए—

Gबहु अCस बल हरहु प्रजन की Pर ।
(जीवहु असीस बल हरहु प्रजन की पीर)

अथवा

करि वि४ देखौ बहु जग बिनु दोसन १ ।
(करि विचार देख्यौ बहु जग बिनु दोसन एक)

इस प्रकार भारतेन्दुजी अलङ्कारों के कुशल चित्रकार होने के साथ-साथ शब्द क्रीड़ा तथा भाषा की वक्रता के भी कुशल कलाकार थे ।

छन्द कौशल—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बङ्गला तथा अन्य भाषाओं के प्रचलित छन्दों का प्रयोग कर अपनी काव्य-प्रतिभा का भूरि-भूरि परिचय दिया है । एक ही कवि की रचनाओं में इतने विविध छन्दों का प्रयोग हमारे लिए आश्चर्य का विषय है । उन्होंने संस्कृत के अनुष्टुप्, बसंततिलका, शार्दूल विक्रीडत, शालिनी छन्दों का प्रयोग किया है । 'सीताबल्लभ स्तोत्र' तथा 'संस्कृत लावनी' में क्रमशः दोहों और लावनियों का संस्कृत में व्यवहार किया है । इसके अतिरिक्त हिन्दी के दोहा, चौपाई, सार, चौपाई, छप्पय, रोला, ताटंक, कुण्डलिया, सवाई, गीता, विष्णु-पद

आदि छन्दों का प्रयोग भी समुचित रूप से हुआ है। जनता से सम्बन्ध रखने वाले कजली, लावनी, विरहा, मलार, रेखता, मुकरी, चैती आदि छन्दों को प्रयोग कर भारतेन्दुजी ने अपनी कविता को जन-साधारण तक पहुँचाने का प्रयास किया है। रेखता और ग़जल लिखने में भी भारतेन्दुजी सिद्धहस्त थे। वर्णित छन्दों में कवित्त, रूप घनाक्षरी, सवैया (दुर्मिल, किरीट, मत्तगयंद) आदि के प्रयोग में उनको अधिक सफलता मिली है। भारतेन्दुजी कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के संगीतज्ञ भी थे। इसीलिए 'प्रेम मालिका' 'प्रेम तरंग', 'मधु मुकुल', 'होली', 'वर्षा' आदि में उन्होंने विविध राग रागनियों में अत्यन्त ही सरस और सुन्दर पद लिखे हैं। विष्णुपद, सवाई, सार, सरसी, ताटंक, वीर आदि छन्दों का प्रयोग भारतेन्दुजी ने पदों में विशेष रूप से किया है। बंगला के 'पयार' नामक वर्णिक छन्द का प्रयोग 'प्रातः समीरन' में किया गया है। इस प्रकार भारतेन्दुजी की छन्द-कुशलता उन्हें एक उच्चकोटि के कवि की श्रेणी में रखती है। गीति काव्य के तो वह एक महान कवि ही कहे जाएँगे। भक्त हृदय से निसृत सरस पद सूर और मीराबाई के पदों का सा आनंद देते हैं। सारांश यह है कि भारतेन्दुजी छन्द-शास्त्र के भी प्रकाण्ड पण्डित थे।

रस—यदि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' अर्थात् रस से भरा हुआ वाक्य ही काव्य है; तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दुजी उच्चकोटि के कलाकार थे। उनकी रचनाओं में साधारण रूप से तो सभी रसों का चित्रण हुआ है किन्तु प्रधानतया तीन रस हैं—शृङ्गार, हास्य तथा शान्त। भारतेन्दुजी धर्मानुरागी, ईश्वरोनुरागी तथा प्रेमी व्यक्ति थे। भक्ति की रचनाओं में उनके प्रेम की मधुर व्यंजना दर्शनीय है। उनके प्रेम की अद्भुत अभिव्यक्ति को देखकर हमें सूर और मीरा की रचनाओं का सा आनन्द आता है। राधाकृष्ण की प्रेममयी लीलाओं से सम्बन्धित वर्णन से ऐसी रचनाओं में शृङ्गार-रस की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। देखिए :—

'पिय तोहि राखौंगी हिय में छिपाय।
देखन न दैहौं काहुँ पियारे रहौंगी कंठ निज लाय।

पल की ओट होन नहिं देहौं लूटौंगी सुख समुदाय।
'हरीचंद' निधरक पीओंगी अधरामृतहि अघाय॥

उपर्युक्त शृङ्गार तो लौकिक होते हुए भी अलौकिक है किंतु भारतेन्दुजी ने रीति कालीन शैली की परम्परा के अनुसार लौकिक शृङ्गार का भी सांगोपांग रूप से चित्रण किया है। नायिकाभेद, नखशिख वर्णन आदि का चित्रण भी उनसे अत्यन्त सरस एवं मनमोहक बन पड़ा है। देखिए :—

'सिसुताई अजौं न गई तन तें तऊ जोवन जोति बटोरे लगी।
सुनि कै चरचा 'हरिचंद' की कान कछूक दै भौंह मरोरै लगी।
बचि सासु जेठानिन सो पिय तैं दूरि घूंघट में दृग जोरै जगी।
दुलही उलही सब अंगन तें दिन द्वै तें पियूष निचोरै लगी।'

अथवा

'नव कुंजन बैठे पिया नंदलाल जू जानत हैं सब कोक-कला।
दिन में तहाँ दूती भुराय कै लाई महा छविधाम नई अबला।
जब धाय गही 'हरिचंद' पिया तब बोली अजू तुम मोहि छला।
मोहि लाज लागै बलि पाँव परौ दिन हीं इहा ऐसी न कीजै लला॥'

इनके अतिरिक्त एक वासक सजा नायिका का उदाहरण देखिए। प्रेमाधिक्य तथा औत्सुक्य के कारण पति की अनुपस्थिति में ही वह अकेली केलि करने लगी है—

'आजु सिंगार कै केलि के मन्दिर बैठी न साथ मैं कोऊ सहेली।
धाय के चूमै कबौं प्रतिबिंब कबौं कहै आपुहि प्रेम पहेली॥
अङ्क में आपुने आपै लगै 'हरिचन्द जू' सी करै आपु नवेली।
प्रीतम के सुख में पिय मैं भई आए तें लाज के जान्यौ अकेली॥'

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतेन्दुजी की शृंगार रस की कविताएँ अत्यन्त सरस, सरल तथा हृदयस्पर्शी हैं। यही कारण कि उनके जीवन-काल ही में उनकी इन सरस रचनाओं का जनसाधारण में प्रचार हो गया।

शृंगार के पश्चात् भारतेन्दुजी की हास्य रस की रचनाएँ आती हैं। भारतेन्दुजी स्वभावतः विनोद प्रकृति के व्यक्ति थे। अतः उनकी रचनाओं में

सितारे हिंद थे। वह हिन्दी में अरबी फारसी शब्दों के प्रयोग के पक्ष में थे। उनका कहना था अरबी फारसी के शब्दो के प्रयोग से ही हिन्दी भाषा में चमत्कार उत्पन्न हो सकता है। इस दल की नीति की प्रतिक्रिया के रूप में दूसरे दल के नेता आगरा निवासी राजा लक्ष्मणसिंह थे। वह विशुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे। उनका कहना था कि बिना संस्कृत के प्रयोग के भाषा में गांभीर्य नहीं आ सकता। वस्तुतः गम्भीरता-पूर्वक विचार किया जाये, तो राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द तथा राजा लक्ष्मणसिंह दोनों ही अतिवादी थे। फलतः दोनों को अपने-अपने क्षेत्र में सफलता न मिल सकी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र समन्वयवादी प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने अवसर की गति-विधि पर गम्भीर विचार किया और मध्यम मार्ग ग्रहण किया। उन्होंने अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण न तो संस्कृत की क्लिष्ट पदावली को ही अपनी शैली में स्थान दिया और न अरबी, फारसी के अप्रचलित शब्दों को। वह जानते थे कि सरलता और स्वाभाविकता के अपूर्व गुणों को अपनाने से हिन्दी की जातीयता की रक्षा हो सकती है। अतः भारतेन्दुजी ने हिन्दी उर्दू के संघर्ष को समाप्त करके अपने सक्रिय प्रयोगों से हिन्दी भाषा में एकरूपता का समावेश किया। उसकी रूपरेखा प्रस्तुत की। वह जानते थे कि हिन्दी को जनता तक पहुँचाने के लिए एक कर्णधार एवं युगनेता की आवश्यकता थी। अतः वह स्वयं ही इस उत्तरदायित्व को लेने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने स्वयं ही लिखने का बीड़ा ही नहीं उठाया वरन् लेखकों की एक मण्डली का निर्माण किया जो साहित्य-सर्जना का एक आंदोलन छेड़े। इस प्रकार सभी तत्कालीन लेखक भारतेन्दुजी की भाषा को ही आदर्श मानने लगे। उस समय के प्रकाशित पत्र और पत्रों में भारतेन्दुजी की भाषा का ही प्रयोग होने लगा। संक्षेप में भारतेन्दुजी ने जनता के सामने भाषा के परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप को रक्खा। हिन्दी भाषियों के लिए यही प्रकृति एवं साहित्यिक रूप था। हिन्दी को नये मार्ग पर उन्होंने ही खड़ा किया। अतः उपर्युक्त कथन कि 'भारतेन्दुजी ने गद्य भाषा को एक निश्चित् रूप देकर गद्य-परम्परा चलाई थी' अक्षरशः सत्य है।

भारतेन्दुजी ने 'हिन्दी भाषा' पर एक लेख लिखते हुए हिन्दी-भाषा-शैली पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उन्होंने हिन्दी भाषा-शैली के तीन रूप हमारे सामने रक्खे—

१—जिसमें संस्कृत शब्द हैं।

२—जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं।

३—जो शुद्ध हिन्दी है।

पृथक-पृथक उदाहरणों से तीनों प्रकार की शैलियाँ अधिक स्पष्ट हो जायेंगी। प्रथम प्रकार की शैली में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। ऐसी गद्य रचनाओं में भाषा, क्लिष्ट संस्कृत पदावली रखते हुए भी, अलंकृत तथा प्रसाद गुण से पूर्ण है। इसके अतिरिक्त ऐसी रचनाओं से भारतेन्दुजी के संस्कृत के प्रकांड पण्डित होने का परिचय भी मिलता है। देखिए—

'अहा! यह कैसी अपूर्व और विचित्र वर्षा ऋतु साम्प्रत प्राप्त हुई है। अनवर्त्त आकाश मेघाच्छन्न रहता है और चतुर्दिक कुझझटिका पात से नेत्र की गति स्तम्भित हो गई है। प्रतिक्षण अभ्र में चंचला पुंश्चली स्त्री की भाँति नर्तन करती हुई और वैसे ही बकावली उड्डीपमान होकर इतः ततः भ्रमण कर रही है। मयूरादि अनेक पक्षीगण प्रफुल्लित चित्त से रव कर रहे हैं और वैसे ही दर्दरगण पंकाभिषेक करके कुकवियों की भाँति कर्ण-बेधक ढक्का झंकार सा भयानक शब्द करते हैं।'

द्वितीय प्रकार की संस्कृत के अल्प शब्द-पूर्ण-शैली कुछ सरल है। उसमें संस्कृत के सरल, सुबोध और लोक प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया है। कहीं-कहीं मुहावरों और कहावतों के समुचित प्रयोग से भाषा में प्रवाह भी आ गया है। संक्षेप में यह शैली प्रथम शैली की अपेक्षा कुछ अधिक सरल, एवं बोधगम्य है। देखिए—

'सब विदेशी लोग घर फिर आ गए और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया पुल टूट गए बाँध खुल गए पंक से पृथ्वी भर गई पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाए बहुत वृक्ष समेत पुल तोड़ गिराए सर्प बिलों से बाहर निकले महानदियों ने मर्यादा भंग कर दी और स्वतन्त्रता स्त्रियों की भाँति उमड़ चली।'

तृतीय प्रकार की शैली शुद्ध हिन्दी की शैली है। उन्होंने गद्य भाषा के इसी रूप को अपनी रचनाओं के लिए सर्वोत्तम समझा। वस्तुत विचार किया जाए तो हिन्दी की जातीय शैली भारतेन्दुजी के कथनानुसार यही कही जा सकती है। ऐसी शैली में उन्होंने भाषा के लोक व्यवहार में आने वाले प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया। देखिए—

'पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए, क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फन्दे में पड़ गये कि इधर की सुध ही भूल गये। कहाँ (तो) वह प्यार की बातें, कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहाँ जाऊँ कैसी करूँ मेरी तो ऐसी कोई मुँह बोली सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ कुछ इधर उधर की बातों से ही जी बहलाऊँ।

उपर्युक्त तीनों शैलियों पर अपने विचार प्रकट करते हुए भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने स्वयं अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—

'हम इस स्थान पर वाद नहीं किया चाहते कि कौन भाषा उत्तम है। और वही लिखना चाहिए पर हाँ मुझसे कोई अनुमति पूछे तो मैं यह कहूँगा कि नम्बर २ और ३ लिखने के योग्य हैं।'

यदि गम्भीरतया विचार किया जाए तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि तृतीय प्रकार की शैली में हिन्दी का जातीय रूप निहित है। उन्होंने अपनी रचनाओं में हिन्दी के इसी रूप को प्रधानता दी है। किसी-किसी स्थान पर भारतेन्दुजी की भाषा क्लिष्ट संस्कृत के शब्दों से पूर्ण हो गई है, किन्तु उन्होंने अधिकांशतः अनलंकृत एवं कोमलकांत पदावली का ही प्रयोग किया है जो पाठकों को अपनी सरलता एवं स्वाभाविकता के गुण से मंत्र-मुग्ध किए बिना नहीं रहती। उन्होने इस शैली को ही जनता तक अपना दिव्य सन्देश फैलाने लिए सबसे अधिक उपयुक्त समझा। इसीलिए इसमें प्रचलित मुहावरों, ावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग भी बड़ी स्वच्छन्दता के साथ किया गया है। 'चन्द्रावली' नाटिका में भारतेन्दुजी की इस शैली की झाँकी हमें ुर्ण रूप से होती है। इसमें स्त्री पात्रों की भाषा की विविधता अवलोकनीय भारतेन्दुजी ने अटकटु शब्दों का प्रयोग तो नाममात्र को भी नहीं किया

है। उनकी भाषा की सरसता पाठकों के हृदय के अन्तस्तल को स्पर्श किए बिना नहीं रहती। इसका एकमात्र कारण है उनका सरस एवं अनुरागपूर्ण हृदय। इसके अतिरिक्त उनकी कवित्व शक्ति ने भाषा को कहीं-कहीं अत्यन्त ही सरस एवं हृदय-स्पर्शी बना दिया है। 'काश्मीर कुसुम', 'रामायण का समय', 'महाराष्ट्र देश का इतिहास', 'अग्रवालों की उत्पत्ति', 'बादशाह-दर्पण', 'क्षत्रियों की उत्पत्ति', 'बूँदी का राजवंश', 'चरितावली', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली' आदि नाटकों में भारतेन्दुजी ने भाषा के इसी आदर्श रूप को अपनाया है। स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्हें अपने आदर्श का पालन करने में भूरि-भूरि सफलता मिली है। निम्नलिखित उदाहरण देखिए—

'हिन्दुस्तान के बहुत से पण्डितों का निश्चय है कि शिंशिया शीशम वृक्ष को कहते हैं। किन्तु हमारी बुद्धि में शिशिया सीताफल अर्थात् शरीफे के वृक्ष को कहते हैं। इसके दो बड़े भारी सबूत हैं। प्रथम तो यह कि यदि जानकीजी से शरीफे से कुछ सम्बन्ध नहीं तो सारा हिन्दुस्तान उसको सीताफल क्यों कहता है। दूसरे यह कि महाभारत के आदि पर्व में राजा जनमेजय की सूर्य यज्ञ की कथा में एक श्लोक है जिसका अर्थ यह है कि आस्तिक की दोहाई सुनकर जो साँप न हट जायगा उसका सिर शिंश वृक्ष के फल की तरह सौ टुकड़े हो जायगा।

उपर्युक्त शैली आदर्श हिन्दी का सुन्दर उदाहरण है। इसमें गाम्भीर्यता का पुट अधिक है। इस प्रकार साधारण विवरणात्मक शैली के अतिरिक्त भारतेन्दु की शैली के हमें दो रूप मिलते हैं—

१—भावना-प्रधान

२—विवेचना-प्रधान।

पहले प्रकार की शैली का प्रयोग नाटकों में विशद् रूप से हुआ है। ऐसी शैली में भावों की स्वाभाविक मार्मिकता एवं स्वाभाविकता दर्शनीय है। कृत्रिमता का नितान्त अभाव है। अलङ्कारों के समुचित प्रयोग तथा सरस शब्दों के समन्वय से भाषा में आकर्षण कूट-कूटकर भरा है। देखिए—

'तो क्या इस शीतल सरोवर में तुम न नहाओगे? अवश्य नहाना होगा। आप न नहाओगे और अपने जनों को कहो कि इसमें स्नान करें। प्यारे, यह

अक्षय सरोवर नित्य भरा रहेगा और इसमें नित्य नये कमल फूलेंगे और कभी इसमें कोई मल न आवेगा और इन प्रेमियों की भीड़ नित्य लगी रहेगी।'

द्वितीय प्रकार की शैली में भारतेन्दुजी ने गवेषणापूर्ण विषयों का प्रतिपादन अत्यन्त ही अनुपम रूप से किया है। ऐतिहासिक अथवा पुरातत्व सम्बन्धी लेखों में हमें इसी शैली की झाँकी होती है।

'बूँदी का राजवंश चौहान क्षत्रियों से है। इस वंश का मूल पुरुष अन्हल चौहान प्रसिद्ध है। भट्ट लोगो के मत से चौहान का नाम चतुर्भुज है। अन्हल, अनल शब्द का अपभ्रंश है, क्योंकि अनल, अग्नि को कहते हैं और आबू के पहाड़ पर जो चार वंश उत्पन्न किये गये, वे अग्नि से उत्पन्न किये गये थे।'

भावना प्रधान तथा विवेचना प्रधान शैलियों के अतिरिक्त भारतेन्दुजी की तृतीय प्रकार की शैली है जिसे हम हास्यरस पूर्ण व्यग्यात्मक शैली कह सकते हैं। 'वैदिकी हिसा हिंसा न भवति', 'अन्धेर नगरी' आदि में इसी शैली का प्राधान्य है। सक्षेप में भाषा की दृष्टि से उन्होंने गद्य में खड़ीबोली का प्रयोग किया, पद्य में ब्रजभाषा को अपनाया। फारसी के विद्वान होने के कारण कहीं-कहीं उनकी शैली में उर्दू की बहार देखते ही बनती है।

'हस्बदिल ख्वाह अमूदगी को खुशी कह सकते हैं, यानी जो हमारे दिल की ख्वाहिश हो, वह कोशिश करने से या इत्तफाकिया बगैर कोशिश किए आवे तो हमको खुशी हासिल होगी।'

सक्षेप में भारतेन्दुजी की भाषा शैली सरस, सुन्दर, भावानुकूल, अपने व्यक्तित्व की पूर्ण छाप लिए हुए, पण्डिताऊपन तथा प्रान्तीयता के दोष से मुक्त, व्यावहारिक, सरल एव हिन्दी जातीय रूप लिए हुए कही जा सकती है। यद्यपि उसमें व्याकरण की अशुद्धियाँ हैं किन्तु भाषा की शैशवावस्था में उनका होना स्वाभाविक ही है। हिन्दी को संजीवनी शक्ति देने का श्रेय उन्हीं को है। डाक्टर श्यामसुन्दरदासजी के शब्द भारतेन्दुजी की महानता के द्योतक हैं—

'लल्लूलालजी ने जिस भाषा को नया रूप दिया, लक्ष्मणसिह ने जिसे सुधारा, उसको परिमार्जित और सुन्दर ढांचे में ढालने का श्रेय भारतेन्दुजी को प्राप्त है। उनके समय में इस बात का झगड़ा चल रहा था कि हिन्दी

उर्दू मिश्रित हो या नहीं। राजा शिवप्रसादजी उर्दू की मिश्रित भाषा के पक्षपाती थे और उर्दू शैली के पृष्ठपोषक थे। भारतेन्दुजी ने इसके विरुद्ध शुद्ध हिन्दी का पक्ष लिया और उसको नये सांचे में ढालकर एक नवीन शैली की स्थापना की। उनकी भाषा में माधुर्यगुण की प्रचुरता है तथा वह प्रौढ़ता और परिमार्जितता से सम्पन्न हैं।'

अतः हिंदी के प्रवर्त्तक एवं जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ही कहे जाएँगे।

प्रश्न १२—'भारतेन्दुजी की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति था' इस कथन की पुष्टि कीजिए।

उत्तर—भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र केवल युग-द्रष्टा ही नहीं थे वरन् युग-स्रष्टा भी थे। उन्होंने जिस समय जीवन-क्षेत्र में प्रवेश किया, उस समय देश एक विदेशी सत्ता से क्षीण एवं अशक्त होने पर दूसरी विदेशी सत्ता द्वारा पराधीनता के चिर-बन्धन में बन्दी होने जा रहा था। देश की इस दुर्दशा को देखकर भारतेन्दुजी का राजभक्त हृदय क्रान्ति के उद्‌गारों से उमड़ने लगा। फलतः उनका ध्यान देश की नव-जागृति तथा नवीन-चेतना की ओर भी गया! उनकी यही भावना-पूर्ण-देशभक्ति में साकार हो गयी। इस प्रकार भारतेन्दुजी आगे चलकर पक्के देश-भक्त बन गये। साथ ही उनकी वाणी का स्वर भी देशभक्ति ही हो गया। भारतेन्दुजी की रचनाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राष्ट्रीयता के मूल प्रवर्तक वही थे। उनके काव्य में उत्कृष्ट देशभक्ति तथा सच्ची राष्ट्रीयता की पावन झाँकी होती है। भारत की तत्कालीन परिस्थिति को देखकर, उन्हें भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण हुए बिना नहीं रहता था। प्राचीन भारतीय वीरों तथा उनकी कलित-कीर्ति का स्मरण कर उनके हृदय में देश-प्रेम की भावना जागृत होने लगती थी। भारत की दुर्दशा पर वह अत्यन्त क्षोभित होकर कहते हैं :—

'रोवहु सब मिलकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥'

एक समय था जब भारत की कीर्ति दिगदिगन्त में व्याप्त थी। आज वह

परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ा हुआ है। उसकी दुर्दशा कैसी दयनीय है!

'हाय वहै भारत भुव-भारी। सब ही विधि सो भयो दुखारी।'

भारत के सुख के दिन कहाँ चले गये? ऐसा प्रतीत होता है मानों विधाता रूठ गया हो।

'कहा करी तकसीर तिहारी, रे बिधिना भारतहि दुखारी।'

'सोइ भारत की आज, यह भई दुरदशा हाय।
कहा करैं कित जाँय, नहिं सूझत कछू उपाय॥'

अतः उपर्युक्त पंक्तियाँ वस्तुतः एक सच्चे देशभक्त के हृदय से निकले उद्‌गार हैं। उनकी अधिकाँश रचनाएँ देश-प्रेम से ओत-प्रोत हैं। देश की दुर्दशा पर तो उनका हृदय द्रवित हो उठा है जिसे पढ़कर कठोर से कठोर हृदय वाला व्यक्ति भी आँसू बहाये बिना नहीं रह सकता है। देखिए :—

'काशी प्राग अयोध्या नगरी। दीन रूप सम ठाढ़ी सगरी।
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई। रही सबै भुव मुँह मसि लाई।
हाय पंचनद! हा पानीपत। अजहुँ रहे तुम धरनि विराजत।
हाय चित्तौर! निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहिं मँझारी।
जा दिन तुव अधिकार नसायो। सो दिन क्यों नहिं धरनि समायो।
तुम में नहिं जल जमुना गङ्गा। बढ़हु वेग करि तरल तरंगा।
धोवहु यह कलंक की रासी। बोरह किन झट मथुरा कासी।

× + ×

घेरि छिपावहु विन्ध्य हिमालय। करहु सकल जल भीतर तुलमय।
धोवहु भारत अपजस पंका। मेटहु भारत भूमि कलंका।

उपर्युक्त पंक्तियों में चित्तौड़, पंचनद, काशी, अयोध्या आदि का नाम लेकर भारतेन्दुजी ने देशभक्ति की भावना का कैसा अलौकिक परिचय दिया है। देशभक्त के लिए देश की दुर्दशा असहनीय है। इसलिए वह सदा देशोद्धार के लिए ईश-प्रार्थना करने लगते हैं।

'कहाँ करुनानिधि केसव सोए?
जागत नेक न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोए।
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराए।

इसके पसु गज को आरत लखि आतुर प्यादे धाए।
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुख सुनि अकुलाए।

\+ + +

'हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यों परम दयाल कहाई।
सब विधि बूड़त लखि निज देसहिं लेहु न अबहिं बचाई।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु जी के चरित्र में देशभक्ति कूट-कूट कर भरी थी। यहाँ तक तो केवल देशोद्धार के लिए उनकी ईश प्रार्थना आदि का ही उल्लेख है। आगे चलकर वह देश नेता के रूप में देशवासियों को जागरण का दिव्य संदेश देते हुए दिखाई देते हैं। रंगमंच पर भाषण देते हुए आजकल के समाजवादी या कांग्रेसी नेता से अधिक प्रभाव उनके संदेश में दिखाई देता है। उनके अमर कथन सारगर्भित तथा उनकी उच्च आकांक्षाओं के द्योतक हैं। देखिए :—

'लहौ सुख सब विधि भारतवासी।
विद्या कला जगत की सीखौ तजि आलस की फाँसी।
अपनो देश धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी॥
उद्यम करिकै एक मति निजबल बुद्धि प्रकासी।
पंचपीर की भगति छांड़ि कै हौ हरि चरन उपासी॥
जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुन रासी।'

यही नहीं भारतेन्दुजी तो भारत की पूर्णोन्नति के पक्ष में थे। वह जानते थे कि बिना हिन्दी उन्नति के राष्ट्रोन्नति होना असम्भव है। अतः हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति करने के लिए उन्होंने अथक प्रयत्न किया। उनका मत था :—

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥'

× + ×

चहुह जो साँचहु निज कल्यान,
तौ मिलि सब भारत सन्तान।

जपौ निरन्तर एक जवान,
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान ।।'

\+ \+ \+

करहु विलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल ।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल ।।
लहहु आर्य भ्राता सबै विद्या बल बुधि ज्ञान ।
मेटि परस्पर द्रोह मिलि होहु सबै गुन खान ।।

इस प्रकार एक सच्चे युग नेता की भांति, अतीत के गौरवशाली भारत का स्मरण कराकर वह सोये हुए भारतियों को जगाना चाहते थे। पूर्वजों के वीर कृत्यों का स्मरण कराकर नवीन चेतना उत्पन्न करने की उनकी परमेच्छा थी। देखिए :—

'जहँ भये शाक्य हरिचन्दरु नहुष ययाती ।
जहँ राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती ।।
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती ।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती ।।
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई ।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।'

कहीं-कहीं तो भारतेन्दुजी की वाणी में देश पर सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर एक सेना नायक का जोश भरा प्रतीत होता है। स्वीकार करना पड़ेगा कि उनकी राष्ट्रीयता में देश के करुण चित्र ही नहीं वरन् गम्भीर अपवाद की छाया भी पूर्ण रूप से अंकित है। इसलिये वह क्षुब्ध होकर क्रान्ति का राग अलापने लगते हैं :—

'चलहु वीर उठि तुरत सबै,
जय ध्वजहिं उड़ाओ ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि,
रन रंग जमाओ ।

\+ \+ \+

जो आरजगन एक होइ,
निज रूप सम्हारैं ।

तजि गृह कलहहिं अपनी,
कुल मरजाद विचारैं।
तौ ये कितने नीच कहा,
इनको बल भारी।
सिंह जगे कहुँ स्वान,
ठहरि हैं समर मँझारी।'

आगे चलकर हम भारतेन्दुजी को ब्रिटिश सरकार की निरंकुशता का तीव्र विरोध करते हुए पाते हैं। वह तो स्पष्टवादी तथा निर्भीक व्यक्ति के। जिस व्यक्ति ने अपने पूर्वजों के संचित धन को खा डालने को बीड़ा उठा लिया था, वह विदेशी सरकार के अत्याचारों को स्पष्ट करने में क्यों संकोच करता? अतः मातृभूमि के लिए वह सर्वस्व बलिदान करने को तैयार होगये। जैसे-जैसे ब्रिटिश सरकार के वह कोप भाजन बनते गये, वैसे ही वैसे उनके विरोध में स्पष्टता आती गयी। अंगरेजों द्वारा आर्थिक शोषण को देखिए:—

'अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै मँहगी काल रोग विस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥'

आगे चलकर उनकी देशभक्ति में निर्भीक नेता के से गुण स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होगये। अंगरेजी शासन की कूट-नीति को वह पूर्णरूप से समझते थे। अंगरेजों पर छोड़े गये व्यंग-वाणों का प्रहार एक मुकुरी के रूप देखिए।

'भीतर ही भीतर सब रस चूसै।
बाहर से तन मन धन भूसै॥
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज॥'

सक्षेप में भारतेन्दुजी की समस्त रचनाओं में देशभक्ति का स्वर अनिय-

मनोहर एवं मनोरम चित्र अङ्कित किये हैं कि पाठक मन्त्रमुग्ध हुए बिना नहीं रहते। एक ओर उन्होंने भगवान की लीला का गुणगान एवं कीर्तन कर ऐसा सागर तैयार किया है कि प्रत्येक भक्त-हृदय उसमें अवगाहन कर तृप्त हो जाता है। दूसरी ओर शृङ्गार आदि के ऐसे सरस एवं स्वाभाविक चित्र अङ्कित किये हैं कि प्रत्येक प्रेमी-हृदय बरबस आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। विनय, बाल-लीला, शृङ्गार आदि सभी विषयों को लेकर भारतेन्दुजी ने अपनी भावनाओं को साकार बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। श्री राधाकृष्ण की युगल-मूर्ति का सुन्दर चित्र देखिए :—

'रे मन करु नित यह ध्यान।
सुन्दर रूप गौर स्यामल छवि जो नहिं होत बखान॥
मुकुट सीस चन्द्रिका बनी कनफूल मुकुण्डल कान।
कटि काछिन सारी पग नूपुर बिछिया अनवट पान॥
कर कंकन चूरी दोउ भुज पै बाजू सोभा देत।
केसर खौर बिन्दु सेंदुर को देखत मन हरि लेत॥
मुख पै अलक पीठ पै बेनी नागिन सी लहरात।
चटकीलो पट निपट मनोहर नील पीत फहरात॥
मधुर मधुर अधरन बंसी धुनि तैसी ही मुसकानि।
दोउ नैनन रस भीनो चितवनि परम दया की खानि॥
ऐसो अद्भुत भेष विलोकत चकित होत सब आय।
'हरीचंद' बिन जुगल कृपा यह लख्यो कौन पै जाय॥'

भारतेन्दुजी पक्के वैष्णव थे। गोस्वामी तुलसीदास जी की भांति वह भगवान से प्रार्थना करते हैं :—

'कहौ किमि छूटै नाथ, सुभाव।'
काम क्रोध अभिमान मोह सँग तन को बन्यो बनाव।
ताहू मैं तुव माया सिर पै औरहु करन कुदाव॥
'हरीचंद्र' बिन नाथ कृपा के नाहिन और उपाव॥

स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दुजी ने विनय का स्वाभाविक चित्रण कर भक्त-हृदय का परिचय दिया है। यह पूर्ण सत्य है कि संसार के माया-

जाल में पड़े रहने के कारण मनुष्य अशक्त हो जाता है। उनकी शक्ति पूर्ण-रूप से क्षीण होजाती है। ऐसे समय उसे परमात्मा का स्मरण होता है। उसकी कृपा की आशा में ही वह जीवित रहने का प्रयत्न करता है। वह जानता है, भगवान के दरबार में उसकी प्रार्थना अवश्य सुनी जायगी। पतितों का उद्धार करने में भगवान भूल न करेंगे—ऐसा भक्त के हृदय को विश्वास होता है। भारतेन्दुजी भी 'उसी दरवार' का गान करने लगते हैं :—

'बलिहारी है या दरवार की।
बिधि निषेध मरजाद शास्त्र की गति नहीं जहाँ प्रकार की।
नेमी धरमी ज्ञानी जोगी दूर किए जिम नारकी।
पूछ होत जहाँ 'हरीचंद' से पतितन के सरदार की॥'

अटूट विश्वास ही यदि भक्ति की चरमावस्था है तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दुजी ने सूर तथा तुलसी की भांति भक्ति के सरस तथा अनूठे उदगार प्रकट किये हैं जिनसे हमें उनके गीति काव्य के महान कवि होने में सन्देह नहीं रहता है। निम्नलिखित पद में 'प्रभु की कृपा' में उनका अटूट विश्वास कूट-कूट कर भरा है। देखिए :—

'प्रभु की कृपा कहाँ लौं गैये।
करुना में करुनानिधि ही के इती बड़ाई पैये॥
डार डार जौ अघ मेरे तौ पात पात वह बोलै।
नदी नदी जो पाप चलत तौ बिन्दु बिन्दु वह डोलै॥
थल थल में छिपि रहत जु यह वह रेनु रेनु ह्वै धावै।
दीप दीप जौ यह समान वह किरिन किरिन बनि आवै॥
काकी उपमा वाहि दीजिए व्यापक गुन जेहि माहीं।
हिय अन्तर अँधियार दुराने अघहूँ नहिं बचि जाहीं॥
सिन्धु लहर हू सिन्धुमयी है मूढ़ करै जो लेखे।
नाहीं तो 'हरिचन्द' सरीखे तरत पतित कहूँ देखे॥

उपर्युक्त पद में भक्त कवि के भक्त-हृदय से निकले उद्‌गार हैं। 'डार डार पात पात' आदि शब्दों से संगीत के स्वर अनियंत्रित भाव से हमारी हृदयतन्त्री को झंकृत कर देते हैं। एक भाव लेकर एक ऐसा सरस, सुन्दर

एवं संगीतमय भावचित्र अङ्कित कर देना भारतेन्दुजी की अलौकिक प्रतिभा का द्योतक है। गीतिकाव्य के ऐसे सरस खण्डचित्र निश्चय ही उन्हें महान कवियों की श्रेणी में उच्च स्थान प्रदान करते हैं। यही नहीं उन्होंने अनुपम माधुर्य का समावेश कर भक्ति का अति उज्ज्वल रूप उपस्थित किया है। वह अहमत्व (Egoism) को मिटाकर ईश्वर में पूर्ण विलीनीकरण चाहते हैं। उनकी हार्दिक इच्छा है कि भगवान नेत्रों में पुतली, हृदय में प्राण, शरीर में शक्ति, कानों में शब्द होकर निवास करें। देखिए :—

'नैनन में निवसौ पुतरी ह्वै, हिय में बसौ ह्वै प्रान।
अँग अँग संचरहु सक्ति ह्वै, ऐहो मीत सुजान॥
मन में वृत्ति वासना ह्वै कै प्यारे करौ निवास।
ससि सूरज ह्वै रैन दिना तुम हिय नभ करहु प्रकास॥
वसन होइ लिपटौ प्रति अंगन भूषन ह्वै तन बाँधौ।
सोंधो ह्वै मिलि जाउ रोम प्रति अहो प्रानपति माधौ।
ह्वै सुहाग सेन्दुर सिर विलसो अधर राग ह्वै सोहौ।
फूल माल ह्वै कंठ लगौ मम निज सुवास मन मोहौ॥
नभ ह्वै पूरौ मम आँगन औ पवन होइ तन लागौ।
ह्वै सुगन्धि मो घरहि वसावहु रस ह्वै के मन पागौ।
श्रवन न पूरौ होइ मधुर सुर अंजन ह्वै दोउ नैन।
होइ कामना जागहु हिय मे करहु नीद बनि सैन॥
रहौ ज्ञान में तुम ही प्यारे तुममय तन मम होय।
'हरीचन्द' यह भव रहै नहिं प्यारे हम तुम दोय॥'

अद्वैत भावना का ऐसा सुन्दर अंकन अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु जी के गीतिकाव्य में सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के भक्त कवियों की भांति अपने आराध्य के प्रति आत्म-निवेदन का भाव है। उनके गीति काव्य में कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रसखान आदि सभी कवियों की भावना एवं शैली का उज्वल एवं समान रूप देखने को मिल सकता है। कबीर की भांति भारतेन्दु जी गाते सुनाई देते हैं :—

'साँझ सबेरे पंछी सब क्या,
कहते हैं कुछ तेरा है।
हम इक दिन उड़ जायँगे,
यह दिन चार बसेरा है।'

सूर की भांति उनकी आत्मीयता देखिए :—

'ब्रज के लता पता मोहि कीजै।
गोपी पद पंकज पावन की रज जामें सिर भीजै।
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै॥
श्री राधे राधे मुख यह वर 'हरीचन्द्र' को दीजै॥'

तुलसी की भांति भारतेन्दुजी की अविचल श्रद्धा देखिए :—

'तुम सॉचे साहेब करुना निधि,
पूरन जन मन काज।'

इसी प्रकार मीरा की भांति भारतेन्दुजी की तन्मयता देखिये :—

'वेण आवो प्यारा बनवारी म्हारी ओर'

उपर्युक्त उदाहरणों से हमें यह मानना पड़ेगा कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र गीति काव्य में भक्त कवियों में किसी से पीछे नहीं रहे हैं। विनय, आत्यनिवेदन आदि के पदों की रचना कर उन्होंने अपने को गीतिकाव्य का महान कवि सिद्ध किया है।

गीति काव्य में बाल लीला, वात्सल्य रस आदि भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारतेन्दुजी तो बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने साहित्य के किसी अङ्ग को अछूता नहीं छोड़ा! अतः यह कैसे सम्भव हो सकता था कि साहित्य के इस अङ्ग पर लेखनी न चलाते। उनके पदों को देखने से यह प्रतीत होता है कि बाल चित्रण में भी उनको पूर्ण सफलता मिली है। कृष्ण जी की बाल-लीला की एक पावन झाँकी कीजिए :—

'छोटो सो मोहनलाल छोटे छोटे ग्वाल बाल,
छोटी छोटी चौतनी शिरन पै सोहैं।
छोटे छोटे भँवरा चकई छोटी छोटी लिए।
छोटे छोटे हाथन खेलै मन मोहैं।

छोटे छोटे चरन सों चलत घुटुरुवन।
चढ़ी ब्रजबाल छोटी छोटी छवि जोहैं।
'हरीचन्द्र' छोटे छोटे कर पै माखन लिए।
अपका बरनि सकें ऐसे कवि को हैं॥'

श्री राधिका की बाललीला का वर्णन देखिए :—

'मनिमय प्यारी आँगन खेलैं।
किलकि किलकि हुलसत मनहीं मन गहि अँगुरी मुख मेलैं।
बड़भागिन कीरति सी मैया गोहन लागी डौलैं।
कवहुँक लै झुनझुना बजावति मीठी बतियन बोलैं॥
अष्ट सिद्धि नव निधि जेहि दासी सो ब्रज शिशु वपुधारी।
जोटी अविचल सदा विराजो 'हरीचन्द्र' बलिहारी॥

उपयुक्त दोनो पदों में भारतेन्दुजी ने स्वाभाविकता कूट-कूट कर भर दी है। बाल्यकाल जीवन का सबसे स्वर्णिम एवं मधुर चरण हैं। इस काल में अपनी स्वाभाविक मस्ती होती है। बच्चों की तुतली बातें, उनकी स्वाभाविक क्रीड़ाएँ किसके हृदय को आकर्षित नहीं करती। भारतेन्दुजी ने उसी स्वाभाविकता का सजीव एवं साकार चित्र अङ्कित कर अपनी काव्य प्रतिभा का भूरि-भूरि परिचय दिया है।

तदनन्तर गीति काव्य में शृङ्गार रस का विशेष स्थान है। प्रेम शृङ्गार का मुख्य विषय है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी स्वभाव से ही प्रेमी जीव थे। अतः उन्हें शृङ्गार रस के चित्रण में भी अलौकिक सफलता मिली है। यदि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'। अर्थात् रस से भरा हुआ वाक्य ही कविता है तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतेन्दुजी के प्रेम एवं शृङ्गार रस के पद, काव्य की पराकाष्ठा पर पहुँच गये हैं। उनकी 'चन्द्रावली' नाटिका ही प्रेम का चल-चित्र है जो हृदय को मुग्ध किये बिना नहीं रहती। चन्द्रावली के प्रेम में जो उन्माद, तड़पन एवं व्याकुलता है, वह अपनी निजी विशेषता रखती है। वियोग के विषम स्वर ने उसके हृदय से निकले उद्‌गारों में एक ऐसी वेदना का पुट दे दिया है, जो गीति-काव्य के हृदय-स्पर्शी गुण को अक्षुण बनाये रखता है। चन्द्रावली वियोगिन के वेदना-पूर्ण हृदय की झाँकी

कीजिए :—

'सखी ये नयना बहुत बुरे।
तबसों भए पराए जब से हरिसों जाय जुरे॥
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तड़फत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे।
जग खीज्यो बरज्यो पै ये नहीं हर सों तनकि मुरे।
अमृत भरे देखत कमलन से विष के बुते छुरे॥

चन्द्रावली के हृदय की पीर को जानने वाला कोई नहीं। साथ ही अपने मन की गोपनीय बातों को किसी से प्रकट करना भी ठीक नहीं है। इसी का चित्रण भारतेन्दुजी ने अत्यन्त ही अनुपम रूप से किया है। देखिए—

'मन की कासों पीर सुनाऊँ।
बकनो वृथा और पत खोनी सबै चबाई गाऊँ।
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै धरिहै उलटो नाऊँ॥'

स्वीकार करना पड़ेगा कि, 'हृदय से निकले उद्‌गार हृदय को स्पर्श करते हैं' वाला कथन पूर्ण रूप से चरितार्थ होता है।

भारतेन्दुजी मूलतः शृङ्गार-कवि थे। उन्होंने वल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित होकर राधा कृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना की। इसलिए उनकी रचनाओं में राधा और कृष्ण की केलि-क्रीड़ाओ के शृङ्गारिक चित्र अत्यन्त ही मनोहर एवं आकर्षक रूप में अङ्कित हुए हैं। रीतिकाल मे हरि और राधिका साधारण नायक नायिकामात्र रह गये थे। अतएव भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के काव्य में भी हमें कृष्ण और राधा का वही विलासमय रूप देखने को मिलता है। उन्होंने शृङ्गार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को स्थान दिया है। रीतिशास्त्र के अनुसार खंडिता, वासकसज्जा, अभिसारिका, विरहोत्कंठिता, प्रोषितपतिका आदि सभी नायिकाओ का सजीव वर्णन किया है। गीतकाव्य में शृङ्गार रस के समावेश से एक विशेष सौंदर्य उपस्थित हो गया है। देखिए—

'दामिन वैरिन वैर परी।
जान न देत पिया प्यारे ढिग,
प्रगटत बात दुरी॥